वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५

विवेक ज्योति

वर्ष ५७ अंक १ जनवरी २०१९

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित
हिन्दी मासिक

जनवरी २०१९

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५७
अंक १

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. विवेकपञ्चकम् ५
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) ५
३. विविध भजन
सगुण साकार की झाँकी (स्वामी राजेश्वरानन्द) हे सारदे माँ ! हे सारदे माँ ! (सत्येन्दु शर्मा) जय माँ सारदा रामदुलारी (स्वामी रामतत्त्वानन्द) धन्य धन्य...(धनराज मेवाड़ा) हे भगवान विनती मेरी (बाबूलाल परमार) ६
४. सम्पादकीय : आत्म-मन्थन का महापर्व ७
५. स्वामी विवेकानन्द का शिकागो व्याख्यान (प्रधानमन्त्री श्रीनरेन्द्र मोदी) ९
६. साधुओं के पावन प्रसंग (१) (स्वामी चेतनानन्द) १२
७. निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२५) १४
८. यथार्थ शरणागति का स्वरूप (५/६) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) १६
९. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१३) (स्वामी अखण्डानन्द) १९
१०. जीवन के विकास में इच्छाशक्ति का महत्त्व (स्वामी ओजोमयानन्द) २१
११. सारगाछी की स्मृतियाँ (७५) (स्वामी सुहितानन्द) २५
१२. (बच्चों का आँगन) स्वामी विवेकानन्द और टिकट-परीक्षक २७
१३. ईशावास्योपनिषद (१३) (स्वामी आत्मानन्द) २८
१४. आध्यात्मिक जिज्ञासा (३७) (स्वामी भूतेशानन्द) ३०
१५. (कविता) आलोकित हो तन-मन सारा (आनन्द तिवारी पौराणिक) ३१
१६. ऐसी स्मार्ट सिटी जो अयोध्या जैसी हो (कप्तान सिंह सोलंकी) ३२

१७. (कविता) मिलते हैं भगवान
(भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश') ३४
१८. मुण्डक-उपनिषद-व्याख्या (७)
(स्वामी विवेकानन्द) ३५
१९. (युवा प्रांगण) स्वामीजी की प्रार्थना : हे माँ
जगदम्बे ! मुझे...(स्वामी मेधजानन्द) ३७
२०. नारी-शक्ति का आदर्श – माँ सारदा
(स्वामी सत्यरूपानन्द) ३८
२१. स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (११)
(प्रव्राजिका व्रजप्राणा) ४०
२२. आधुनिक मानव शान्ति की खोज
में (२९) (स्वामी निखिलेश्वरानन्द) ४२
२३. (कविता) स्वामीजी आशीर्वाद करें ४३
२४. (प्रेरक लघुकथा) काम-क्रोध-मद-मोह
माया बन्धनमूल (डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) ४४
२५. समाचार और सूचनाएँ ४५

जनवरी माह के जयन्ती और त्योहार

१	कल्पतरु दिवस
१२	स्वामी सारदानन्द, राष्ट्रीय युवा दिवस
१३	गुरु गोविन्द सिंह
२६	गणतंत्र दिवस
२७	स्वामी विवेकानन्द

आवश्यक सूचना

रामकृष्ण मिशन विवेकान्द आश्रम, रायपुर में २ जनवरी, २०१९ को विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन होगा। ३ जनवरी, २०१९ से ११ जनवरी, २०१९ तक आश्रम प्रांगण में स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती 'राजेश रामायणी' के रामचरितमानस पर संगीतमय प्रवचन होंगे। २७ जनवरी, २०१९ को आश्रम में स्वामी विवेकानन्द की तिथिपूजा के उपलक्ष्य में विशेष-पूजा, होम, आरती का आयोजन होगा और तदनन्तर उपस्थित भक्तों को प्रसाद वितरित किया जाएगा ।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द का यह तैलचित्र रामकृष्ण आश्रम, मैसूर की प्रदर्शनी का है। स्वामी विवेकानन्द ने कन्याकुमारी के शिलाखण्ड पर ध्यानमग्न होकर भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य के बारे में चिन्तन किया और भारत के उज्ज्वल विकास हेतु अपनी भावी योजनाओं को मूर्त रूप दिया ।

*विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : **www.rkmraipur.org***

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री गिरधर दास झालानी, अनूप नगर, इन्दौर (म.प्र.)	२,०००/-
श्री रामकृपाल बंसल, करणी नगर, बीकानेर (राज.)	१,१००/-
मदर इंडिया सिक्युरिटी प्रा. लि., मुम्बई (महा.)	१०,०००/-
श्री अभिषेक चक्रबोर्ती, इजीपुरा, बैंगलुरू (कर्नाटक)	१,०००/-
श्री आर. पी. सुखीजा, रायपुर (छ.ग.)	२,०००/-

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५३३.	श्री जय प्रकाश, पाण्डेयपुर, वाराणसी (उ.प्र.)	शा. इन्द्रजीत सिंह महाविद्यालय, अकलतरा, जांजगीर-चांपा (छ.ग.)
५३४.	श्री अनुराग, स्व.श्री रामराज, स्व.श्रीमती उषा प्रसाद, दिल्ली	गवर्नमेंट कॉलेज, कलारी, घुमारवीं, जिला-बिलासपुर (हि.प्र.)
५३५.	,, ,,	महारानी श्री जया राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राजस्थान)
५३६.	,, ,,	शा. इंस्टीट्यूट ऑफ लेदर एंड फुटवियर टेक्नोलॉजी,जलंधर

कुम्भ-मेला २०१९

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम

विज्ञानानन्द मार्ग, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद – २११ ००३, फोन : (०५३२) २४१३३६९, मो.- ९४५३६३०४०६

email : rkmsald@gmail.com, allahabad@rkmm.org

एक अपील

हम सभी जानते हैं कि तीर्थराज प्रयाग (इलाहाबाद) विभिन्न धर्मों का आध्यात्मिक पावन स्थल है। न केवल हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय, अपितु सभी धर्मों और मतों के लोग, तीर्थराज प्रयाग के आध्यात्मिक परिवेश में व्याप्त विशाल स्पन्दन की अनुभूति करने यहाँ आते हैं। कुम्भ के समय यहाँ विभिन्न धर्मों का समागम दिखायी देता है, जिसकी छवि मानो लघु-भारत के सदृश हो जाती है। संत-महात्मा एवं धर्माचार्यों की अनुकम्पा से अनादिकाल से भक्तगण पावन त्रिवेणी संगम में डुबकी लगाकर पवित्र होने हेतु कुम्भ मेले में आते हैं। आगामी कुम्भ मेला १४ जनवरी से १९ फरवरी, २०१९ तक आयोजित किया जा रहा है। सरकारी आकलन के अनुसार मेले में १५ करोड़ से अधिक साधु, भक्त और तीर्थयात्री पावन जल में स्नान करेंगे।

इस अवसर पर रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, इलाहाबाद, देश के दूर-सुदूर क्षेत्रों से आये लगभग पाँच लाख से अधिक साधुओं, भक्तों और तीर्थयात्रियों की सेवा-सहायता में अपना योगदान देगा। हमारे लिए यह विशिष्ट सुअवसर है कि हम ठाकुर, माँ और स्वामीजी के संदेश का प्रसार करें और स्वामीजी के 'मानव-सेवा ही ईश्वर-सेवा है' के सपने को साकार कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करें। परम पूज्य स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज (रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, इलाहाबाद के संस्थापक और श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य) के आशीर्वाद से हम त्रिवेणी संगम तट पर शिविर का आयोजन कर रहे हैं।

मेले के दौरान श्रद्धालुओं, तीर्थयात्रियों को निम्नलिखित सुविधायें दी जायेंगी –

* प्रार्थना और व्याख्यान सभागृह
* चौबीस घण्टे नि:शुल्क, आपातकालीन सुविधासम्पन्न धर्मार्थ चिकित्सालय
* पुस्तक-विक्रय केन्द्र एवं ठाकुर, माँ स्वामीजी की चित्र-प्रदर्शनी
* साधु, भक्त और तीर्थयात्रियों के भोजन और आवास की सुविधा

इस कुम्भ मेला शिविर का कुल व्यय लगभग १,५०,००,०००/- (एक करोड़ पचास लाख) रुपये अनुमानित किया गया है। इतने बड़े व्यय-भार के वहन हेतु हम आपसे और अन्य उदारहृदय भक्तों से आग्रह करते हैं कि वे इस मंगल कार्य में हमारा सहयोग करें, साथ ही स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रवर्तित सेवा-यज्ञ के अधिकारी बनें।

आपकी उदारतापूर्वक दी गई दान-राशि सहर्ष स्वीकार और सूचित की जायेगी। आप दान-राशि 'रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, इलाहाबाद' के नाम से चेक, डी.डी. द्वारा अथवा बैंक ट्रांसफर NEFT/ RTGS on State Bank of India, Allahabad, A/C. NO. 10210448619, IFSC : SBIN0002584 में जमा करा सकते हैं।

आपका दान आयकर अधिनियम १९६१ की धारा ८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है। कृपया दानराशि के साथ अपना पैन नम्बर अवश्य भेजें। हमारा पैन नम्बर – AAAARIO77P है।

आशा है कि आप इस विशेष अवसर पर हमारे सेवाकार्यों में सहयोग कर अपना जीवन लाभान्वित करेंगे।

नमस्कार और मंगल-कामनाओं सहित,

स्वामी अक्षयानन्द
सचिव

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १५००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **– व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान - आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५७ जनवरी २०१९ अंक १

विवेकपञ्चकम्

वीरेश्वरांशं विबुधावतंसं 'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थम्'।
कारुण्यमूर्तिं कमनीयरूपं तं देशिकेन्द्रं सततं नमामि।।
विवेकसंज्ञं निहतारिषट्कं अद्वैतसिद्धान्तविमर्शदक्षम्।
सर्वाश्रयं सर्वजनैः प्रपूज्यं तं देशिकेन्द्रं सततं स्मरामि।।
'न्यग्रोधवत् सर्वजनाश्रयस्त्वं भवे'रिति प्रीतगुरुप्रशंस्यम्।
दीनैकबन्धुं दीननाथदीप्तिं तं देशिकेन्द्रं सततं नमामि।।
ज्ञानासिना छेदितमोहग्रन्थिं निरंजनं निःसृत सर्वभ्रान्तिम्।
अज्ञानमातंग-समूहसिंहं तं देशिकेन्द्रं सततं नमामि।।
'अष्टादशैः शिष्टगुणै'रुपेतं भवाब्धिमग्नस्य जनस्य पोतम्।
तृणीकृता येन तदष्टसिद्धिस्तं देशिकेन्द्रं सततं नमामि।।

– वीरेश्वर शिवोद्भूत, विद्वानों के अलंकार, वेदान्ततत्त्व के निश्चितार्थ ज्ञाता, दयालु और सुन्दर स्वामी विवेकानन्द को मैं प्रणाम करता हूँ। विवेक-संज्ञा से विभूषित काम-क्रोधादि षट्शत्रुओं के विजेता, अद्वैत सिद्धान्त के दक्ष व्याख्याकार, सबके आश्रय, सर्ववन्द्य विवेकानन्द का मैं स्मरण करता हूँ। 'विशाल वट के समान तुम सबके आश्रय बनोगे' ऐसा गुरु ने प्रसन्न होकर जिनकी प्रशंसा की थी, जो दीनों के एकमात्र बन्धु, सूर्य सदृश तेजस्वी हैं, जो ज्ञानखड्ग से मोहग्रन्थि के छेदनकर्ता, मायातीत, भ्रान्तिहीन, अज्ञान-गजराज हेतु सिंह हैं, शिष्टाचारजनित अठारह दैवीशक्तिसम्पन्न हो पतितों के भवसिन्धु से तारक, अष्टसिद्धियों को तृणवत् माननेवाले हैं, ऐसे स्वामी विवेकानन्द जी का मैं स्मरण करता हूँ।

पुरखों की थाती

देहबुद्ध्या तु दासोऽस्मि, जीवबुद्ध्या त्वदंशकः।
आत्मबुद्ध्या त्वमेवाहं इति मे निश्चिता मतिः।।६२३।।

– (श्रीराम के पूछने पर हनुमानजी ने कहा) – जब कभी मुझमें देहात्म-बोध रहता है, तब मैं स्वयं को आपका दास समझता हूँ; जब कभी मुझमें जीवात्म-बोध रहता है, तब मैं स्वयं को आपका अंश अनुभव करता हूँ और जब कभी मुझे आत्मबोध होता है, तब मैं स्वयं को आपके साथ अभिन्न अनुभव करता हूँ – यही मेरी निश्चित अनुभूति है।

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने।।६२४।।

– प्रत्येक पर्वत पर मणि-माणिक्य नहीं होते, प्रत्येक हाथी के मस्तक में मोती नहीं होता, साधु सर्वत्र नहीं मिलते और प्रत्येक वन में चन्दन के वृक्ष नहीं होते। (इसी प्रकार संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तुएँ अति दुर्लभ होती हैं। (हितोपदेश)

एकवर्णं यथा दुग्धं भिन्नवर्णासु धेनुषु।
तथैव धर्म-वैचित्र्यं तत्त्वमेकं परं स्मृतम्।।६२५।।

– जैसे भिन्न-भिन्न रंग की गायों से दूध एक ही रंग का प्राप्त होता है, वैसे ही विभिन्न धर्म-सम्प्रदाय एक ही परम तत्त्व की शिक्षा देते हैं।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वम् आत्मवशं सुखम्।
एतद्-विद्यात् समासेन लक्षणं सुख-दुःखयोः।।६२६।।

– संक्षेप में सुख और दुख का लक्षण इस प्रकार है – जो कुछ दूसरों पर निर्भर करता है, वह सब दुखदायी है और जो कुछ स्वयं पर निर्भर करता है, वह सब सुखकारी है।

विविध भजन

सगुण साकार की झाँकी

स्वामी राजेश्वरानन्द

बसी है जिनके नैनों में युगल सरकार की झाँकी।
न उनका मन लुभा सकती मलिन संसार की झाँकी।।
है लज्जित रंग मेघों का ओ दामिनि की दमक लज्जित।
लखि के राम सीता संग सगुण साकार की झाँकी।।
खड़े हैं लखन रिपुसूदन भरतजी भी हैं कर जोड़े।
विराजे चरणों में हनुमत है ये दरबार की झाँकी।।
सद्गुरु की कृपा से बस यही तो मर्म समझा है।
कि जन 'राजेश' की खातिर है ये उद्धार की झाँकी।।

हे सारदे माँ ! हे सारदे माँ !

सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

हे सारदे माँ ! हे सारदे माँ !
भव-चक्र-दुख से हमें तार दे माँ।।
इस लोक की तुम जगदीश्वरी हो,
परलोक की तुम परमेश्वरी हो।
सब जीवों की उद्धारकर्तृ,
ठाकुर की लीला-सहचरी हो।।
मैं गोद तेरी नित पा सकूँ माँ !
हे सारदे माँ ! हे सारदे माँ !!
लोक-परलोक की सुखदातृ,
सब सिद्धियों की सार हो माँ !
ऋद्धि-सिद्धियाँ सब तेरी हथेली,
इस पुत्र का भी तुम भार लो माँ !
तुमसे हमारी यह प्रार्थना माँ,
भक्ति का हमको उपहार दे माँ !
हे सारदे माँ ! हे सारदे माँ !!

जय माँ सारदा रामदुलारी

स्वामी रामतत्त्वानन्द

जय माँ सारदा रामदुलारी, शरणागत प्रतिपालनहारी।।
दीन-हीन सब आश्रय पावे, माँ कह जो इक बार पुकारी।।
जग-ज्वाला से व्यथित हृदय पर, ममता का आँचल पसारी।।
तुम ही केवल एक सहारा, सुन जननी अब आर्त्त हमारी,।।
यह किंचन है दास तुम्हारो, सींचो माँ ममता की वारी।।

धन्य धन्य धन्य हो स्वामी विवेकानन्द !

धनराज मेवाड़ा, राजस्थान

धन्य धन्य धन्य हो स्वामी विवेकानन्द।
स्वामी विवेकानन्द, जय स्वामी विवेकानन्द।।
बचपन में था प्रेम-दया से भरा हुआ जीवन,
श्रद्धा-भक्ति से पूरण उनका तन और मन।
आशीष पाकर गुरुदेव का पाये परमानन्द।।
धन्य धन्य धन्य हो...
गुरुकृपा से शिष्य को ऐसा मिला प्रसाद,
भूले ममता मोह को मिटा सब अवसाद।
कण-कण में दिखने लगा पूरण परमानन्द।।
धन्य धन्य धन्य हो ...
जीव-ब्रह्म एक है, एक अणु ब्रह्माण्ड,
एक ईश्वर राजता, मूरख, ज्ञानी प्रकाण्ड।
सेवा करो सभी की समझो सच्चिदानन्द।।
धन्य धन्य धन्य हो ...

हे भगवान विनती मेरी

बाबूलाल परमार

हे भगवान विनती मेरी, कभी न कभी सुन लेना।
सुना है मैंने, सुनते सबकी, नहीं कुछ लेना-देना।।
भिन्न-भिन्न भक्तों को आपने जीवन दिया आन-बान का।
क्यों नहीं मिला मुझे आज तक, आश्रय करुणानिधान का।।
मैं ही हूँ एक ऐसा अभागा, कभी न कभी सुन लेना।
हे भगवान ...
मेरे पाप-संताप ने मुझको चारों ओर से घेरा है।
देख लिया इस दुनिया में, न कोई अपना मेरा है।।
स्वार्थ के रिश्तों में लिपटा मैं, कभी न कभी सुन लेना।
हे भगवान ...
'बाबूलाल' की विनती पर, हे भगवान ध्यान देना।
भला-बुरा मैं जैसा भी हूँ, दीन-दयाल अपना लेना।।
इस जीवन से हार चुका हूँ, कभी न कभी सुन लेना।
हे भगवान ...

सम्पादकीय

आत्म-मन्थन का महापर्व

इस वर्ष प्रयाग की पावन नगरी भागीरथी के तट पर त्रिवेणी-संगम सान्निध्य में अर्द्ध कुम्भ का आयोजन है। कुम्भ-स्नान भारतीय संस्कृति की लोकमंगल यात्रा का पूर्ण विकसित रूप है। भारतीय संस्कृति पर्वों, व्रतों, त्योहारों, विभिन्न संस्कारों और लोक-प्रथाओं द्वारा अपनी प्राचीन सभ्यता और सनातन धर्म की जन-मंगल यात्रा करते हुए, मानो पूर्ण कुम्भ महापर्व रूपी सिन्धु की विराटता में मिलकर जनमानस को धन्य करती है और स्वयं को भी कृतार्थ बोध करती है। संसार की सभी साधनाओं, व्रतों, उपासनाओं का उद्देश्य तो पूर्णता की प्राप्ति ही है।

प्रयाग कुम्भ के बारे में कहा जाता है कि

मकरे च दिवानाथे वृष राशि स्थिते गुरौ।
प्रयागे कुम्भ योगो वै माघमासे विधुक्षये।।

– माघी अमावस्या को मकर राशि में सूर्य-चन्द्रमा के रहने पर तथा वृष का गुरु हो, तो प्रयाग में कुम्भ होता है।

कुम्भ का उल्लेख वेद में भी मिलता है –

पूर्णः कुम्भोधि काल अहितस्तं वै
पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वा भुवनानि
प्रत्यंकालं तमाहुः परमे व्योमन्।।

हे सन्तो ! पूर्ण कुम्भ बारह वर्ष में एक बार आता है। कुम्भ उस काल को कहते हैं, जो महान आकाश में ग्रह-राशि आदि के योग से होता है।

इतिहासकार यह मानते हैं कि विख्यात चीनी दार्शनिक ह्वेनसांग ने अपने कई वर्षों के भारत-प्रवास में प्रयाग कुम्भ मेला का भी परिदर्शन किया था और उससे बहुत प्रभावित हुए थे।

२३ जनवरी, १९३६ के प्रयाग महाकुम्भ मेला का बहुत सुन्दर वर्णन प्रत्यक्षदर्शी परमहंस योगानन्दजी महाराज ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'योगीकथामृत' के पृष्ठ ५२९-५३१ में किया है, जिसमें तत्कालीन प्रयाग कुम्भ मेला के भव्य स्वरूप का चित्रण है। उसमें लगभग बीस लाख लोगों की भीड़ थी। जटा-जूटधारी, कौपीनधारी साधु-संन्यासियों, नागा साधुओं के अखाड़ों का वर्णन है। ग्रामीण लोगों की गंगा-स्नान और श्रद्धा-भक्ति का विस्तृत उल्लेख है। इतने वर्षों के अन्तराल में आज भी कुम्भ महापर्व का स्वरूप लगभग वैसा ही है। कुछ सुविधायें पहले की तुलना में बढ़ी हैं।

कुम्भ महापर्व विभिन्न दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है। जैसे, धार्मिक, सांस्कृतिक, व्यावसायिक और आध्यात्मिक। भौतिकता के अन्य विस्तार में न जाकर मैं केवल दो महत्त्वपूर्ण आयामों – सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पर चर्चा करूँगा। सबसे पहले हम इसके सांस्कृतिक आयाम को देखते हैं।

सांस्कृतिक परिदृश्य के सन्दर्भ में कुम्भ महापर्व

भारत की संस्कृति अनादि काल से विश्वबन्धुत्व सदाचार एकता, उदारता और विराटता का संदेश सम्पूर्ण जगत को प्रदान करती चली आ रही है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्', विश्वं भवत्येकनीडम्' का जयघोष भारत के गंगन-मंडल में निनादित होकर विश्व-नभ-मंडल को झंकृत करता है। आचार्यों ने 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' सदाचार की शिक्षा स्व चरित्र से पूरे संसार को देने का दायित्व भारत को दिया –

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्व स्व चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

राष्ट्रीय एकता की शिक्षा भारतीय संस्कृति और शास्त्र देते हैं –

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।
संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।।
समानो मन्त्रः समिति समानी।
समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

इस वैदिक मन्त्र का सार है कि हम एक-दूसरे की रक्षा करें, एक साथ भोजन करें, एक साथ कर्म करें, तेजस्वी हों और किसी से द्वेष न करें। एक साथ चलें, साथ-साथ एक स्वर में बोलें, हमारे विचार, चिन्तन समान हों, हमारे संकल्प समान हों, हमारी हार्दिक भावनाओं में साम्य हो। वैदिक ऋषि ने इस प्रकार उद्घोषणा की। इन अमूल्य सम्पदाओं से सम्पन्न हमारी संस्कृति है। ये विशेषतायें भारतीय शाश्वत

धर्म और संस्कृति की विरासत हैं। छोटे-छोटे ग्रामों-नगरों के लोग किसी स्थानीय मेले में जाकर स्नान, देव-दर्शन और पूजा के द्वारा परस्पर मिलते हैं, अपने सुख-दुख की बातें करते हैं और अपने हृदय की उदारता को अभिव्यक्त करते हैं। एक साथ मिलकर किसी विषय पर चर्चा करते हैं। जो लोग सामान्यत: किसी विशेष अवसर पर भी एकत्र नहीं हो पाते, उनसे अधिक लोग, किसी मेले, तीर्थ में एकत्र हो जाते हैं। स्थानीय किसी भी मेले से हजारों गुना अधिक लोग कुम्भ मेला में एकत्र होते हैं। इस प्रकार कुम्भ मेला एकता का प्रतीक है। भारतीय एकता, राष्ट्रीय-सामाजिक ऐक्य की भूमिका निभाता है कुम्भ महापर्व।

हिन्दू धर्म के विभिन्न धर्म, वर्ण, मत के लोग यहाँ आकर स्नान-दान, भजन-पूजन-अर्चन करते हैं और अपने धर्म-संस्कृति के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं। विभिन्न मतावलम्बियों की विभिन्न संस्कृतियों की एकता और सौहार्द का प्रतीक है कुम्भ मेला। विभिन्न वेष-भूषा-रहन-सहन के लोग बेहिचक एक साथ अनुशासित और सौहार्दपूर्वक रहते हैं और परस्पर सहायता करते हैं। इस सौहार्द, समन्वय और सामंजस्य का प्रतीक है कुम्भ पर्व।

विभिन्न धार्मिक संस्थाओं के द्वारा लोकहितार्थ सामाजिक और आध्यात्मिक विकास हेतु विभिन्न विषयों पर प्रवचन-माला और सभाएँ होती हैं। धर्माचार्यों द्वारा सर्वसम्मति से लोकानुशासन निर्धारित किए जाते हैं, इसके लिये भी कुम्भ महापर्व की प्रसिद्धि है।

कुम्भ के विभिन्न आयामों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, उसका आध्यात्मिक स्वरूप। अन्य सभी आयाम उसके आध्यात्मिक स्वरूप में विलय हेतु सहयोगी हैं। जैसे छोटे बच्चों को स्कूल जाने के लिये चाकलेट देते हैं, किन्तु चाकलेट उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य तो वहाँ से शिक्षा प्राप्त कर अपने जीवन का निर्माण करना है। भले ही अधिकांश लोग कुम्भ के बाह्य स्वरूप से मुग्ध होकर सन्तुष्ट हो जाते हों, लेकिन वास्तविकता यहीं तक सीमित नहीं है।

कुम्भ का आध्यात्मिक विवेचन

कुम्भ का अर्थ कलश होता है, घट होता है। इस कुम्भ का सर्वांग आध्यात्मिक शक्तियों से परिपूर्ण है। कहा जाता है –

कलशस्य मुखे विष्णु: कण्ठे रुद्र: समाश्रित: ।
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणा: स्मृता: ।।..
कुक्षौ तु सागरा: सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।..
ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदो ह्यथर्वण: ।
अंगैश्च संहिता: सर्वे कलशं तु समाश्रिता: ।।

– कलश के मुख में विष्णु, कण्ठ में रुद्र, मूल में ब्रह्मा, मध्य में मातृशक्तियाँ, कुक्षि में सभी सागर, सप्त द्वीप और पृथ्वी हैं। कुम्भ में चारों वेद और सभी संहितायें हैं।

समस्त प्राणियों के शरीर रूपी घट में परमात्मा विद्यमान हैं। उस परमात्मा की अनुभूति करके ही मानव को सच्ची शान्ति मिल सकती है। सकल जीव-काय रूपी घट की अपेक्षा मानव-तन-कलश अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि नर-तन रूपी घट सुदुर्लभ है। इसकी प्राप्ति हेतु स्वर्गस्थ देव भी लालायित रहते हैं।

सम्पूर्ण शरीरों में शरीरी के रूप में परमात्मा विद्यमान हैं। सकल नर-तन रूपी कुम्भ या घट परमात्म-रसामृत से, भगवद्-रसामृत से परिपूर्ण है, यही वास्तविकता है। यह अनभिव्यक्त रहते हुये भी सदा अल्पाधिक उच्छ्वसित हो रहा है। यह परमानन्द-रस कभी छिप नहीं सकता। किन्तु यह साधना से सर्वाधिक अभिव्यक्त होता है। कबीरदासजी ने कहा है –

प्रेम छिपाये ना छिपे जा घट परगट होय।
घट बिन कहुँ ना देखिये, राम रहा भरपूर।
जिन जाना तिन पास है, दूर कहा उन दूर।।

आवश्यकता है, इस नर-तन-कुम्भ में निहित अमृत को जानने की, जानकर उसे साधना के द्वारा मन्थन करने की और अन्त में उसे पान करने की, तभी अमृत फलदायी होगा, तभी अमरत्वप्राप्ति होगी।

कुम्भ महापर्व की पृष्ठभूमि में भी यही भावना है। इससे सम्बन्धित यह कथा बड़ी प्रसिद्ध है। देव और दानवों ने मिलकर समुद्र-मन्थन कर उसमें निहित रत्नों को निकालकर परस्पर बाँटने का विचार किया। दोनों ने मिलकर समुद्र-मन्थन किया। उसमें बहुत-सी चीजें मिलीं। लेकिन उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण था अमृत। जो अमृत पान करेगा, वह अमर हो जायेगा। देवता यह नहीं चाहते थे कि दुष्ट दैत्य अमृत पीकर अमर हो जायँ। दानव अमृत छोड़ना नहीं चाहते थे। दोनों में विवाद हुआ। तब भगवान विष्णु मोहिनी अप्सरा बनकर आये और अमृत-कलश को लेकर अपने वाहन गरुड़जी को दे दिये। असुर जब अमृत-कुम्भ को गरुड़जी

शेष भाग पृष्ठ ११ पर

स्वामी विवेकानन्द का शिकागो व्याख्यान

प्रधानमन्त्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी

(प्रस्तुत व्याख्यान माननीय प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने ११ सितम्बर, २०१८ को रामकृष्ण मिशन, कोयम्बटूर में रामकृष्ण मठ द्वारा आयोजित स्वामी विवेकानन्द के शिकागो भाषण की १२५वीं वर्षगाँठ के समापन समारोह में वीडियो कांफ्रेंसिंग के द्वारा प्रदान किया था, जिसका सम्पादित अंश विवेक ज्योति के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है। सं.)

स्वामी विवेकानन्द के शिकागो भाषण की १२५वीं वर्षगाँठ समारोह में उपस्थित होकर मैं स्वयं को सौभाग्यशाली मानता हूँ। मुझे बताया गया है कि यहाँ लगभग ४००० युवा मित्र, और वरिष्ठ जन उपस्थित हैं। संयोग से १२५ वर्ष पहले शिकागो में जब स्वामी विवेकानन्द जी ने विश्व-धर्म-संसद में भाषण दिया था, तब श्रोताओं में लगभग ४००० व्यक्ति उपस्थित थे। मुझे एक महान और प्रेरक भाषण की वर्षगाँठ मनाने का कोई दूसरा उदाहरण मालूम नहीं है।

इसलिए यह समारोह स्वामीजी के भाषण के प्रभाव को दिखाता है। यह दिखाता है कि इस भाषण ने किस तरह भारत के प्रति पश्चिम की दृष्टि को बदल दिया और कैसे भारतीय विचार और दर्शन को अपना उचित स्थान मिला।

आपके द्वारा आयोजित यह समारोह शिकागो भाषण की वर्षगाँठ को और अधिक विशेष बनाता है।

श्रीरामकृष्ण मठ तथा मिशन से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति, तमिलनाडु सरकार और यहाँ उपस्थित अपने हजारों युवा मित्रों को बधाई देता हूँ कि वे इस ऐतिहासिक भाषण के स्मृति समारोह का हिस्सा बनने के लिये यहाँ उपस्थित हैं। यहाँ सात्त्विक गुणों वाले संतों और युवा लोगों की ऊर्जा और उत्साह का मिलन भारत की असली शक्ति का प्रतीक है। मैं आपसे दूर होकर भी इस अनूठी ऊर्जा को महसूस कर सकता हूँ। आप इस दिन को मात्र भाषणों तक सीमित नहीं रखेंगे। स्वामीजी के शब्दों को प्रसारित करने के लिए मठ ने अनेक कार्यक्रम प्रारम्भ किए हैं। स्कूलों और कॉलेजों में प्रतियोगिताएँ आयोजित की गई हैं। हमारे युवा लोग महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा करेंगे और आज की भारत की चुनौतियों के समाधान का प्रयास करेंगे। जन-भागीदारी की यह भावना, देश की चुनौतियों से जूझने का यह संकल्प और एक भारत, श्रेष्ठ भारत का यह दर्शन स्वामीजी के संदेश का सार है।

मित्रो ! स्वामी विवेकानन्द ने अपने भाषण के माध्यम से पूरे विश्व को भारतीय संस्कृति, दर्शन और प्राचीन परम्पराओं की रोशनी प्रदान की। शिकागो भाषण के बारे में अनेक लोगों ने लिखा है। आपने भी आज अपनी चर्चा के दौरान उनके भाषण के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर बात की। हम स्वामीजी के शब्दों को दोहराते रहेंगे और उनसे नई बातें सीखेंगे।

मैं उनके भाषण के प्रभाव को बताने के लिए स्वामीजी के ही शब्दों का उपयोग करूँगा। चेन्नई में एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि शिकागो-धर्म-संसद भारत और भारतीय विचारों के लिए अपार सफलता थी। इससे वेदान्त के ज्वार को मदद मिली और यह विश्व में प्रवाहित हो रहा है।

मित्रो ! यदि आप स्वामीजी के कालखण्ड को याद करें, तो उनकी उपलब्धियों के आकार और व्यापक दिखेंगे। हमारा देश विदेशी शासन के शिकंजे में था। हम गरीब थे। हमारे समाज को पिछड़ा रूप में देखा जाता था और वास्तव में अनेक सामाजिक बुराइयाँ थीं, जो हमारे सामाजिक ताने-बाने का हिस्सा हो गई थीं। विदेशी शासक, उनके न्यायाधीश, उनके उपदेशक हमारे हजारों वर्षों के ज्ञान और सांस्कृतिक विरासत को नीचा दिखाने का कोई अवसर नहीं गँवाते थे। हमें अपने लोगों को, अपनी विरासत को नीचा देखने की शिक्षा दी गई। हमें अपनी जड़ों से काट दिया गया। स्वामीजी ने इस सोच को चुनौती दी। उन्होंने शताब्दियों की धूल को साफ करने का बीड़ा उठाया, जो भारतीय संस्कृति के ज्ञान और दार्शनिक विचार पर जम गई थी। उन्होंने विश्व को वैदिक दर्शन की श्रेष्ठता बताई। उन्होंने शिकागो में विश्व को वैदिक दर्शन का ज्ञान दिया और देश के समृद्ध अतीत और अपार क्षमता की भी याद

दिलाई। उन्होंने दिलाया हमें खोया हुआ विश्वास, अपना गर्व और अपने मूल स्रोत से जोड़ा। स्वामीजी ने हम सबको याद दिलाया कि यह वह धरती है, जहाँ से आध्यात्मिकता और दर्शन समुद्री ज्वार की तरह बार-बार उभरते हैं और विश्व को जल-प्लावित करते हैं। यह वह धरती है, जहाँ से मानवता की गिरती नस्लों में जीवन और शक्ति लाने के ज्वार उठते हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने न केवल विश्व पर अपनी छाप छोड़ी, बल्कि देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन को नई ऊर्जा और नया विश्वास भी दिया। उन्होंने देश के लोगों में 'हम कर सकते हैं', 'हम सक्षम हैं' की भावना जागृत की। आत्मविश्वास युवा-संन्यासी के खून के प्रत्येक बूँद में था। उन्होंने देश को यह आत्मविश्वास दिया। उनका मंत्र था –'स्वयं में विश्वास करो, देश को प्यार करो।'

मित्रो ! स्वामी विवेकानन्द जी के इस विजन के साथ भारत पूरे विश्वास से आगे बढ़ रहा है। यदि हम अपने आप में विश्वास करें तथा कठिन परिश्रम का प्रण करें, तो हम क्या नहीं प्राप्त कर सकते!

विश्व ने माना है कि भारत के पास योग और स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेद की सदियों पुरानी परम्परा है। इसके साथ ही भारत आधुनिक टेक्नोलॉजी की शक्ति का उपयोग कर रहा है। आज भारत एक बार में १०० उपग्रह लांच कर रहा है। विश्व समुदाय मंगलयान और गगनयान की बातें कर रहा है। दूसरे देश भीम जैसे ऐप विकसित कर रहे हैं। इससे देश के आत्मविश्वास में बढ़ोत्तरी होती है। हम गरीबों और वंचितों के आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए कठिन परिश्रम कर रहे हैं। इस प्रयास का प्रभाव हमारे युवाओं और हमारी बेटियों के आत्मविश्वास में देखा जा सकता है।

हाल में एशियाई खेलों में हमने देखा कि इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि आप कितने गरीब हैं या आप किस परिवार से आते हैं। अपने आत्मविश्वास और कठिन परिश्रम के जरिए आप अपने देश को गौरव प्रदान कर सकते हैं। आज देश में कृषि उत्पादन रिकॉर्ड स्तर पर है। इसमें हमारे किसानों का समान दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है। उद्योगजगत के व्यक्ति और हमारे कामगार औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि कर रहे हैं। युवा इंजीनियर, उद्यमी और वैज्ञानिक देश को नवाचार की नई क्रान्ति की ओर ले जा रहे हैं।

मित्रो ! स्वामीजी का पूर्ण विश्वास था कि भारत का भविष्य युवाओं पर निर्भर है। वेद को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा था कि युवा, शक्तिशाली, स्वस्थ और तीक्ष्ण बुद्धि वाला भगवान के पास पहुँचेगा। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि आज का युवा संकल्प के साथ आगे बढ़ रहा है। युवाओं की आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए सरकार ने एक नई कार्यप्रणाली और एक नया दृष्टिकोण सामने रखा है। स्वतन्त्रता के ७० सालों के बाद हमारे युवाओं में अनेक ऐसे हैं, जिनके पास रोजगार प्राप्त करने लायक कौशल नहीं है। हालांकि साक्षरता में वृद्धि हुई है, लेकिन हमारी शिक्षा व्यवस्था ने कौशल विकास पर विशेष ध्यान नहीं दिया है। युवाओं के लिए कौशल विकास के महत्त्व को समझते हुए सरकार ने कौशल विकास के लिए एक पृथक् मंत्रालय का गठन किया है। इसके अलावा हमारी सरकार ने उन युवाओं के लिए बैंकों के दरवाजे खोल दिए हैं, जो अपने बल पर अपने सपने को पूरा करना चाहते हैं। मुद्रा योजना के तहत अब तक १३ करोड़ लोगों को ऋण दिए गए हैं। इस योजना ने देश के गाँवों और शहरों में स्व-रोजगार को बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्टार्टअप इंडिया अभियान के तहत नवोन्मेष विचारों के लिए सरकार ने उपयुक्त मंच प्रदान किए हैं। परिणामस्वरूप पिछले वर्ष ८००० स्टार्टअप को मान्यता प्रमाण-पत्र प्राप्त हुए, जबकि २०१६ में यह संख्या ८०० थी। इसका अर्थ यह है कि एक वर्ष के दौरान दस गुनी वृद्धि हुई। विद्यालयों में नवोन्मेष के वातावरण के निर्माण के लिए 'अटल इनोवेशन मिशन' की शुरुआत की गई है। इस योजना के अन्तर्गत अगले पाँच वर्षों में पूरे देश में ५००० अटल थिंकिंग लैब की स्थापना की जाएगी। नवोन्मेषी विचारों को आगे लाने के लिए स्मार्ट इंडिया जैसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है।

मित्रो ! स्वामी विवेकनन्द ने हमारे सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के बारे में भी विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने कहा था कि समाज में समानता तब होगी, जब हम गरीबों में से सर्वाधिक गरीब को सर्वोच्च स्थान पर बैठे व्यक्ति के समकक्ष बिठा देंगे। पिछले चार वर्षों से हम इस दिशा में कार्य कर रहे हैं। जन-धन खातों और इंडिया पोस्ट पेमेंट बैंक के माध्यम से बैंकों को गरीबों के घर के दरवाजे तक पहुँचा दिया गया है। गरीबों में से सर्वाधिक गरीब को सहायता प्रदान करने के लिए आवास, गैस और बिजली कनेक्शन, स्वास्थ्य और जीवन बीमा जैसी योजनाओं को लागू किया गया है।

इस महीने की २५ तारीख को हम पूरे देश में आयुष्मान

भारत योजना का शुभारम्भ करने जा रहे हैं। इस योजना के तहत १० करोड़ से अधिक गरीब परिवारों को गंभीर बीमारियों के नि:शुल्क इलाज के लिए ५ लाख रुपये तक की आर्थिक सहायता सुनिश्चित की जाएगी। मैं तमिलनाडू सरकार और यहाँ के लोगों को इस योजना से जुड़ने के लिए बधाई देता हूँ। हमारा दृष्टिकोण सिर्फ गरीबी को समाप्त करना नहीं है, बल्कि देश में गरीबी के कारणों को जड़ से समाप्त करना है।

मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि आज का दिन एक अन्य प्रकार की घटना की याद दिलाता है, वह है ९/११ की आतंकवादी घटना। इस घटना ने पूरे विश्व को प्रभावित किया था। राष्ट्र समुदाय इस समस्या का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास कर रहा है । सचमुच इस समस्या का हल स्वामीजी द्वारा शिकागो में दिखाए गए मार्ग सहिष्णुता और स्वीकार्यता में है। स्वामीजी कहते थे कि मुझे इस बात का गर्व है कि मैं ऐसे धर्म का अनुयायी हूँ जिसने पूरे विश्व को सहिष्णुता और सार्वकालिक स्वीकार्यता का संदेश दिया है।

मित्रो ! हमारा देश स्वतन्त्र विचारों का देश है। सदियों से हमारी धरती विभिन्न विचारधाराओं और संस्कृतियों की स्थली रही है। विचार-विमर्श करना और निर्णय लेना हमारी परम्परा रही है। लोकतन्त्र और वाद-विवाद हमारे मूल्य रहे हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारा समाज हर तरह की बुराइयों से मुक्त हो गया है। अनूठी विभिन्नताओं वाले इस विशाल देश के समक्ष कई बड़ी चुनौतियाँ हैं।

स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि सभी युगों में कमोबेश सभी जगह दुष्ट व्यक्ति रहा करते थे। हमें समाज के इन दुष्ट व्यक्तियों से सावधान रहना और उन्हें पराजित करना है। हमें यह याद रखना चाहिए कि सभी संसाधनों के होने के बाद भी भारतीय समाज में विभाजन हुआ है, आन्तरिक संघर्ष हुए हैं और बाहरी दुश्मनों ने इस स्थिति का फायदा उठाया है। इन संघर्षों के दौर में हमारे संतों और समाज-सुधारकों ने हमें सही रास्ता दिखाया है। यह रास्ता हमें एक साथ मिल-जुलकर रहने का संदेश देता है। स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा से हमें एक नये भारत का निर्माण करना है।

आप सभी को धन्यवाद देने के साथ ही मैं अपना संबोधन समाप्त करता हूँ। आपने मुझे इस ऐतिहासिक कार्यक्रम में शामिल होने का सुअवसर प्रदान किया । स्कूल और कॉलेज के उन हजारों मित्रों को बधाई, जो स्वामीजी के संदेश को पढ़ते हैं, समझते हैं तथा प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं और पुरस्कार जीतते हैं। आप सभी को एक बार फिर धन्यवाद।

❍❍❍

पृष्ठ ८ का शेष भाग

से छीनने लगे, तब उस छीना-झपटी में कुम्भामृत की कुछ बूँदें छलककर बाहर गिर गयीं। ये बूँदें चार स्थानों में गिरीं, जो महान तीर्थ हैं – प्रयाग, नासिक, हरिद्वार और उज्जैन। तभी से प्रत्येक बारह वर्षों में एक बार इन स्थानों में कुम्भ मेला लगता है और छह वर्षों में अर्द्धकुम्भ मेला लगता है।

साधक सुरसरि के पावन तट पर कुम्भ-काल में निवास कर नियमित स्नान, पूजन-दर्शन-अर्चन, जप-ध्यान, सत्संग आदि साधना करके शरीर-कुम्भस्थ परमानन्दमय अमृतमय परमात्मा का दर्शन करता है, उससे तादात्म्य करता है।

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं – **अनित्यं असुखं लोकं इमं प्राप्य भजस्व माम्** – इस क्षणभंगुर दुखमय जीवन को पाकर मेरा भजन करो। हमें विवेक-विचार कर परमात्म-विरोधी वस्तुओं का त्याग करना होगा और परमात्मोन्मुखी वस्तुओं को ग्रहण करना होगा। हमें आत्म-मन्थन कर हृदयस्थ अमृतेश को प्रकट करना होगा और आत्मनिरीक्षण करते रहना होगा कि कहीं वासना के षट्शत्रुरूपी दैत्य इसे छीन न लें।

कुम्भ मेला विशाल सिन्धु सदृश है, जिसका मन्थन कर मानव को अपने जीवनदायक अध्यात्म-अमृत को निकालना होगा। विभिन्न व्यावसायिक, मनोरंजक, नृत्य, नाटक आदि की भीड़ रूपी भव-जंजाल-वारिधि में छिपे सन्तों, महात्माओं द्वारा प्रदत्त ईश्वरीय प्रवचन, परमात्म-प्रसंगों का अन्वेषण करना होगा। उन्हें श्रवण करना होगा, उसकी साधना करनी होगी, तब जीवन-अमृत मिलेगा, ईश्वरीय सुधा की प्राप्ति होगी। इस ईश्वरीय सुधा से ही मानव शाश्वत अमरत्व प्राप्त कर भव-बन्धनों से आत्यन्तिक मुक्ति प्राप्त करेगा, जिसके लिये वह जन्मों से व्यग्र और साधनारत है। यही कुम्भ महापर्व के आयोजन का सर्वोच्च आदर्श है। ❍❍❍

साधुओं के पावन प्रसंग (१)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

समुद्र के तरंगों की भाँति मानवीय मन में अनेक वृत्तियाँ उठती और विलीन होती हैं। ये लुप्त वृत्तियाँ चित्त में स्मृतियों के रूप में संचित हो जाती हैं। वृत्तियाँ यदि प्रबल होती हैं, तो स्मृति में अपनी स्थायी छाप छोड़ जाती हैं। वे कभी म्लान नहीं होतीं। महान व्यक्तियों की महानता और व्यक्तित्व का भी ऐसा प्रभाव होता है कि उनका एक बार दर्शन भी मन में चिरकाल तक के लिए रह जाता है। जिन्होंने श्रीरामकृष्ण देव, श्रीमाँ सारदा देवी और स्वामीजी का क्षणमात्र भी दर्शन किया था, उनके लिए वह अमूल्य स्मृति चिरकाल के लिए उनके मानसपटल पर अमर हो गई है। स्वामी शंकरानन्द जी महाराज का मैंने अनेक बार दर्शन किया है, किन्तु उनसे घनिष्ठतापूर्वक मिलने का अवसर नहीं मिला। लम्बे समय के व्यवधान के बाद महाराज की अस्फुट स्मृतियों को आकार देने की इच्छा जगी। भगवान की वेदी पर एक छोटा फूल भले ही तुच्छ हो सकता है, किन्तु अनेक छोटे फूलों को गूँथकर जब एक माला बनाई जाती है, तो वह भगवान के कण्ठ पर सुन्दर दिखती है।

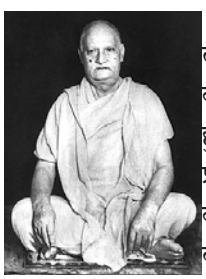
स्वामी शंकरानन्द

स्वामी शंकरानन्द जी का प्रथम दर्शन-लाभ मुझे १९५५ में स्वामीजी की तिथिपूजा के दिन बेलूड़ मठ में हुआ। शाम को महाराज जब मठ-प्राँगण में आए, तब उनके चरण-स्पर्श कर उन्हें प्रणाम किया। उनका विराट व्यक्तित्व देखकर मैं मुग्ध हो गया। तब मैं कॉलेज में पढ़ता था। इसके बाद महाराज से जीवन-पथ पर मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु उन्हें एक पत्र लिखा। उनके सचिव स्वामी सुपर्णानन्द जी महाराज ने पत्र का उत्तर दिया। तदनन्तर साधु बनने के लिए मैं १९५८ में अद्वैत आश्रम में सम्मिलित हुआ। लगभग हर रविवार को मैं बेलूड़ मठ जाता और महाराज के दर्शन करता। कई बार बेलूड़ मठ से महाराज की दवाई मँगाने के लिए अद्वैत आश्रम में फोन आता। वैलिंग्टन स्क्वेयर के हिन्द सिनेमा के पास में एल. एम. मुखर्जी की दवाई की दुकान थी। यह मुखर्जी परिवार महाराज का भक्त था। मैं शाम को दवाई लेकर बेलूड़ मठ जाता और आरती के पहले महाराज का दर्शन कर रात्रि नौ के पहले ही अद्वैत आश्रम वापस आ जाता। महाराज गम्भीर मुद्रा में कुर्सी पर बैठे रहते और साधु-भक्तवृन्द दरवाजे के पास से महाराज को प्रणाम करते। एक दिन महाराज का कण्ठस्वर सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। मैं उपू-दा (स्वामी योगीश्वरानन्द) महाराज के पीछे था। अचानक स्वामी शंकरानन्द महाराज ने घन-गम्भीर स्वर में कहा, ''उपू-दा, आज कैसे !'' उपू-दा महाराज ने कहा, ''महाराज, मैं आपका दास!'' तब महाराज भी बोले, ''उपू-दा, मैं भी आपका दास हूँ।'' उपू-दा अपने स्वाभाविक भाव में सिर हिलाकर बोलने लगे, ''महाराज, मैं आपका दास हूँ, मैं आपका दास हूँ, मैं आपका दास हूँ।'' दोनों वयोवृद्ध साधुओं की विनम्रता और परस्पर श्रद्धापूर्ण वार्तालाप सुनकर मन आनन्द से भर गया।

मायेर बाड़ी (उद्बोधन आश्रम) में मैं १९५० से आना-जाना करता था। वहाँ के अनेक साधुओं से मेरा परिचय था। स्वामी अद्वयानन्द महाराज से मैंने निम्नलिखित घटना सुनी थी, ''एकबार महाराज श्रीमाँ को विजयादशमी का प्रणाम करने के लिए मायेर बाड़ी आए। माँ को प्रणाम करने के बाद वे स्वामी आत्मबोधानन्द जी के कमरे में गए। सब साधुओं ने महाराज को प्रणाम किया। जब वे बेलूड़ मठ वापस जाने के लिए उद्यत हुए, तब स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज (उद्बोधन पत्रिका के तत्कालीन सम्पादक) ने उन्हें प्रणाम किया। महाराज अप्रसन्न होकर उनसे बोले, ''इस प्रकार प्रणाम नहीं करते। प्रणाम करना और प्रणाम स्वीकार करना कोई सामान्य बात नहीं है। प्रणाम करने वाले के भीतर आत्मसमर्पण का भाव चाहिए। जब कोई मुझे प्रणाम करता है, तो मैं ठाकुर से उसकी मंगलकामना के लिए प्रार्थना करता हूँ।''

१९५९ में स्वामी शंकरानन्द जी महाराज ने स्वामी ब्रह्मानन्द के जन्मस्थान शिक्राकुलीन ग्राम में मन्दिर की प्राण-प्रतिष्ठा की और वेदी पर ठाकुर की मूर्ति की स्थापना

की। उस दिन मैं वहाँ उपस्थित था। पूरा दिन उत्सव चला। वह अपूर्व भावमय वातावरण भूलने जैसा नहीं था।

महाराज का स्वास्थ्य ठीक न रहने से मुझे दीक्षा प्राप्त करने में देरी हुई। अन्ततः ३१ मार्च, १९६१ में मेरी दीक्षा हुई। स्वामी बोधात्मानन्द जी महाराज मेरे मार्गदर्शक थे। उन्होंने कहा था, ''तुम्हारी दीक्षा की घटना वचनामृत की शैली में लिखकर रखो, जिससे भविष्य में यह मूल्यवान स्मृति नष्ट न हो जाए।'' मैंने उसे लिख लिया था और बीच-बीच में पढ़ता हूँ। इस डायरी में वर्णन है कि महाराज किस प्रकार दीक्षा देते थे:

दीक्षार्थी एक-एक करके महाराज के कमर में प्रविष्ट हुए। हाथों में अर्घ्य लेकर वे अर्धवृत्ताकार में महाराज के सामने नीचे बैठे। महाराज पूर्व दिशा में अपने आसन पर बैठे थे। उनके सामने एक छोटे टेबल पर ताँबे की प्लेट, कोशा-कुशि (पूजा हेतु एक उपकरण) और पुष्पपात्र रखे थे। महाराज ने आकर्ण-चक्षुओं से हमारा भलीभाँति निरीक्षण किया। उसके बाद पूजा शुरू हुई। सेवक द्वारा दिए गए गंगाजल से महाराज ने हम सबको आचमन करने के लिए कहा। उन्होंने स्वयं आचमन कर बिल्वपत्र, दुर्वा, पुष्प, चन्दन और अक्षत लेकर कुछ अर्घ्य निवेदन किए। फूलों में नागलिंगम, चंपा और जवा थे। उन्होंने दायें हाथ से फूल लेकर उसे बायें हाथ में रखा और कूर्म मुद्रा में ध्यान कर उस फूल को ताम्रपात्र में रख दिया। हम उनकी ध्यानस्थ मूर्ति देखने लगे। उसके बाद वे जपमाला द्वारा जप करने लगे। उनका मुख उस समय हिल रहा था। इस प्रकार ५-७ मिनट बिताने के बाद वे कुछ समय उसी भाव में रहे और फिर बोलना शुरू किए, ''इस संसार में एकमात्र ईश्वर ही सत्य है। मनुष्य जीवन का उद्देश्य ईश्वर-लाभ है और यह दीक्षा ईश्वर-लाभ करने का उपायमात्र है। दीक्षा से शरीर-मन शुद्ध एवं पवित्र होते हैं। दीक्षा ग्रहण करने का मुख्य उद्देश्य है ईश्वर के प्रति स्वयं को समर्पित करना। साधन-भजन करने के लिए तथा ईश्वर की ओर अग्रसर होने के लिए किसी प्रकार की एक सहायता की आवश्यकता होती है और इसी के लिए गुरु का प्रयोजन होता है।

इष्ट-ध्यान – ''ऐसा सोचना कि गुरु तुम्हारे मस्तिष्क में विराजमान हैं। वे सदा-सर्वदा तुम्हारी सर्वांगीण मंगलकामना कर रहे हैं। तुम्हारे हृदय में ठाकुर प्रशान्त, जीवन्त और ज्योतिर्मय रूप में सहस्रदल पद्म पर विराजमान हैं और गुरुदेव धीरे-धीरे मस्तिष्क से हृदय में प्रविष्ट होकर इष्टदेव में विलीन हो गए। श्रीमाँ सारदा देवी ठाकुर के हृदय में विराजमान हैं। वे (इष्ट) ही एकाधार में पुरुष और प्रकृति – सब कुछ हैं। वे ही तुम्हारे हृदय में अवस्थित होकर मन, बुद्धि और इन्द्रियों को परिचालित कर रहे हैं।

तदनन्तर महाराज ने तीन बार स्पष्ट रूप से मन्त्रोच्चार किया और बीच का शब्द अर्थात् बीज का उच्चारण कर उसका अर्थ समझा दिया। इसका अर्थ है कि श्रीरामकृष्ण देव सर्वदेवदेवीस्वरूप हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने कुछ प्रसंग उद्धृत किए – १) दक्षिणेश्वर में मथुरबाबू ने ठाकुर में एक साथ काली और शिव का दर्शन किया था। २) ठाकुर ने एक बार स्वामीजी से कहा था, ''तू राधा का रूप देखना चाहता है?'' स्वामीजी ने कहा, ''आप यदि कृपा कर दिखाएँगे, तो देख सकूँगा।'' उन्होंने स्वामीजी को राधारूप दिखाया। उस समय ठाकुर के शरीर में विलक्षण सौन्दर्य और लावण्य प्रकट हुआ, मानो साक्षात् श्रीराधा स्वामीजी के सामने प्रकट हो गई हों। ३) इसके बाद, काशीपुर उद्यान में ठाकुर ने स्वामीजी को कहा था, ''जो राम, जो कृष्ण, वे ही अब रामकृष्ण हुए हैं, किन्तु तम्हारी वेदान्त की दृष्टि से नहीं।'' यह इसलिए कि अद्वैत वेदान्त में मूर्तिपूजा अथवा धार्मिक अनुष्ठान इत्यादि का कोई स्थान नहीं है। वहाँ एकमात्र ब्रह्म की ही सत्ता है।

इसके बाद महाराज बोले, ''किसी भी देवी-देवता की पूजा क्यों न करो, वह सब ठाकुर की ही पूजा होगी। नाम और नामी अभेद हैं। गुरु, इष्ट और मन्त्र को अभेद समझना। तुम लोग जब शिव अथवा जगदम्बा की पूजा करोगे, तो उसे ठाकुर की ही पूजा समझकर करना।''

जप-सम्बन्धी नियम और मानसपूजा – ''प्रतिदिन सुबह-शाम उत्तर अथवा पूर्व दिशा की ओर मुख कर कम-से-कम १०८ बार इष्टमन्त्र का जप करना। (मन्त्र बोलते समय उन्होंने शुरुआत से लेकर अन्त तक दायें हाथ द्वारा जप करना दिखाया और बायें हाथ से उसकी गणना करना भी बताई) सुबह शौचादि से निवृत्त होकर शुद्ध मन से ठाकुर-घर जाकर निर्दिष्ट आसन पर बैठकर जप करना। पहले गंगाजल अथवा किसी भी जल द्वारा आचमन करना। उस आसन का उपयोग अन्य कार्य के लिए मत करना। अशौच की अवस्था में अथवा माता-पिता की मृत्यु होने पर ठाकुर-घर में प्रवेश मत करना, केवल मन में ही जप करना। आसन पर स्थिर भाव से बैठकर पहले मन-ही-मन

शेष भाग पृष्ठ २६ पर

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२५)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(निवेदिता के पत्रांश)

३ अगस्त, मैक्लाउड को

वे कहते हैं कि परिस्थिति स्वयं ही रूप धारण करेगी। ''माँ ही सब जानती है।'' धन्य हो! सचमुच ''माँ'' ही जानती है। अहा, यह सोचकर कितनी राहत मिलती है कि व्यक्ति का सारा व्यवहार ''माँ'' के तथा उनके (स्वामीजी) साथ चल रहा है, जहाँ वस्तुत: दूसरों की ईर्ष्या या आलोचना का कोई मूल्य नहीं। ''मैं जिस मार्ग पर खड़ी हूँ, वह मुझसे काफी बड़ा है।'' ...

युम, उस दिन रात के समय जब मैं श्रीमती फ. (फंकी) तथा कुमारी जी. (ग्रीनस्टाइडल) के साथ थी, तब उन्होंने मुझे कितनी अद्‌भुत बातें बतायीं। जब वे मात्र आठ वर्ष के बालक थे, तभी वे अनजाने ही प्रतिदिन समाधि में चले जाते थे। और जब मैंने उनसे मृत्यु के विषय में पूछा, तो उन्होंने मुझे बताया कि वे जानते हैं कि यह कैसा है – और वे बोले –

''बारह या पन्द्रह वर्ष पूर्व (ऋषिकेश में) एक पहाड़ी के पास बनी एक झोपड़ी में मैं तुरीयानन्द तथा सारदानन्द के साथ रहता था। मैं तेज बुखार से ग्रस्त था और धीरे-धीरे डूबता जा रहा था। तब एक ऐसा क्षण आया जब मेरा शरीर कन्धों तक ठण्डा हो गया और तब मैं मरता जा रहा था, मरता जा रहा था, ... इसके बाद धीरे-धीरे मेरी चेतना लौट आयी। मेरा कुछ कार्य बाकी था। जब मेरी चेतना लौटी, तो तुरीयानन्द चण्डी-पाठ कर रहे थे और सारदानन्द रो रहे थे।''

जब मैं तुरीयानन्द जी से इसके बारे में बातें कर रही थी, तो उन्होंने बताया कि यह एक चमत्कारिक इलाज था।

रात अँधेरी थी, तेज हवा चल रही थी और उस भयंकर क्षण में, जब ऐसा लग रहा था कि उनके प्राण निकल रहे हैं, तभी उच्च स्वर में, ''भाई, डरो मत'' – कहते हुए द्वार पर एक संन्यासी आये और भीतर आकर स्वामीजी की ओर देखकर बोले कि वे एक विशेष दवा के बारे में जानते हैं, जिससे उनकी बीमारी ठीक हो सकती है और बताया कि वह कहाँ मिल सकेगी। स्थान काफी दूर था और तुरीयानन्द जी उन्हें छोड़कर जाने में हिचकिचा रहे थे (क्योंकि सारदानन्द जी तब सो रहे थे, ताकि बारी-बारी से जागकर स्वामीजी पर नजर रख सकें), तभी एक अन्य संन्यासी आ गये और उन्होंने स्वयं जाकर दवा लाने का वचन दिया। उनके जाकर दवा ले आने पर तुरीयानन्द जी ने उन्हें दवा खिलायी। इसके पाँच मिनट बाद मृत्यु के स्थान पर जीवन लौट आया और वे एक बार फिर जीवित हो चुके थे।

समाधि के प्रसंग में उन्होंने हिन्दू की आकांक्षा के विषय में बताया – हिन्दू अन्तिम क्षण तक सचेत रहकर ईश्वर का स्मरण करना चाहता है। ''जिसका चिन्तन करते हुए जीवन का अन्त होगा, उसी के साथ अगले जीवन की शुरुआत होगी।''

मेरी प्रिय युम, तुम इन पत्रों को अवश्य ही सुरक्षित रखना, ताकि मैं बाद में इन्हें पढ़कर अपनी डायरी की धारा को बनाये रख सकूँ। ...

स्वामीजी बारम्बार कह रहे हैं कि मुझे अपने हृदय की गहराई में उतरकर प्रेरणा की खोज करनी होगी; उसे पाने के बाद मुझे उसी पर विश्वास रखना होगा, अन्य किसी पर भी नहीं।

१२ अगस्त, मिस मैक्लाउड को

कुक (एबेंजर कुक, कलाकार) सेंट फ्रांसिस के विषय में अर्ल बर्नेस का व्याख्यान सुनने गये थे। भाषण के बाद जब वे चर्च की सीढ़ियों पर खड़े थे, तभी ई.टी. स्टर्डी उनके पास आये और धीमी आवाज में बोले, ''क्या आपको नहीं लगता कि पृथ्वी एक अन्य ईसा के जन्म के लिये तैयार है?'' उत्तर में कुक ने कहा, ''क्या आप स्वामीजी से मिले हैं?''

१७ अगस्त, मिस मैक्लाउड को

निम के मंगेतर से मैं बड़ी प्रसन्न हूँ। वह आचार्यदेव के चरणों में अवनत हुआ था – मेरी माँ, निम, रिच (भाई) सभी। सब कुछ अद्‌भुत है।

परन्तु व्यक्तिगत रूप से मैं मिस मुलर की आँखों से देखना चाहती हूँ। मैं सोचना चाहती हूँ कि वे असफल हों,

तो भी उनकी विश्वस्त बनी रहूँ। यदि वे किसी साधारण मनुष्य के समान होते, अपरिचित, घृणित, दूसरों के प्रेम से वंचित – तो फिर व्यक्ति का उनके प्रति प्रेम कुछ मायने रखता। परन्तु इस समय वे जो कुछ हैं – इस स्थिति में उनकी पूजा करना क्या वैसी ही बात नहीं है, जिनके लिये आकाश के तारे तक स्पर्धा करेंगे! जिस कमरे में उन्होंने निवास किया और जिस कुर्सी पर वे बैठे – वह सब कुछ मुझे विश्व का महाकेन्द्र प्रतीत हुआ। अत: प्रिय युम, देख रही हो न, हम लोगों ने एक ऐश्वर्यवान व्यक्ति से ही प्रेम किया है। अब उस आनन्द की कल्पना करो, जब स्वयं ईश्वर ही उनके विरुद्ध हों और हम लोग उनके साथ खड़े हों।

उनकी पूजा के सिवाय करने योग्य अन्य कुछ भी नहीं है। उनके चरणों की धूल के सिवाय पाने योग्य दूसरा कोई भी स्थान नहीं है।

जब वे तुम्हारे पास पहुँचेंगे, तो तुम मेरी ओर से उनकी पूजा करोगी, जैसा कि अब तक मैं तुम्हारी ओर से करती रही हूँ।

२३ अगस्त, स्वामी विवेकानन्द को

प्रिय स्वामीजी,

कुछ दिनों के भीतर ही आप न्यूयार्क पहुँच जायेंगे और मुझे आशा और विश्वास है कि युम स्वयं ही आपसे मिलेगी।

मैं विशेष रूप से आशा करती हूँ कि आपके स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाने के लिये समुद्र यथेष्ट रूप से अशान्त था। London-derry से पत्र पाना बड़े आनन्द की बात थी, परन्तु मैं डिट्रायट में किसी का भी पता नहीं जानती, अत: श्रीमती फंकी को इसके लिये धन्यवाद नहीं दे सकी। मुझे लगता है कि युम, उसकी बहन और श्रीमती बुल के साथ रिजले में आपके दिन वास्तविक शान्ति के साथ सुन्दर ढंग से बीतेंगे। आप सभी इसे कितना पसन्द करेंगे। आपका कैम्प में पहुँचना और उसी समय सभी का कैम्प में उपस्थित रहना कितने सौभाग्य की बात है! कल मेरी हैमण्ड दम्पती से भेंट हुई और रात के समय यहाँ श्रीमती हेमण्ड के साथ दो घण्टे का एकान्त भी मिला। वह कितनी अद्‌भुत है! मुझे लगता है कि वह भक्ति से पूरित एक बैटरी है। वह बोली कि जब उसने पहली बार आपको क्लब-रूम में प्रवेश करते समय देखा, तभी वह समझ गयी थी कि उसके जीवन में आपका क्या महत्त्व है और उसने अपने पति की ओर उन्मुख होकर कहा था, ''ये वही हैं, जिनके लिये हम प्रतीक्षा कर रहे थे।'' और अपने 'विजन' के विषय में बोली, उसने आपको कहा था, ''मैं श्री स्टर्डी के समान ही निष्क्रिय हूँ।'' वह बोली, ''एक ओर खड़े होकर प्रतीक्षा करते रहने के सिवा करने योग्य कुछ था ही नहीं। वह हो चुका है और इसके फलस्वरूप अब सब कुछ ठीक है!'' परन्तु शायद मैं यह कहकर कोई बड़ी भूल नहीं कर रही हूँ कि भविष्य में हेमण्ड-दम्पती और टॉमसन उसी मार्ग पर चलेंगे, जिसे सेवियर-दम्पती ने अपनाया था।

आपकी शिष्या इप्सम की मिस फ्रांसिस विलियम्स मुझसे मिलने आयी थीं। आपने कभी अपने एक व्याख्यान में दो-एक वाक्यों के द्वारा ही उनके जीवन में जो शान्ति तथा जीवन का तात्पर्य ला दिया था; और उसके बाद आपके केवल एक शब्द के द्वारा उन्होंने मन को हृदय में एकाग्र करने की बात समझ ली थी। वे बता नहीं पातीं कि इन सबका क्या तात्पर्य है और इससे उन्हें क्यों सहायता मिली। परन्तु वे बोलीं कि वस्तुत: अब उनका जीवन सन्तुष्ट तथा शान्ति से पूर्ण है। उन्होंने हठपूर्वक मेरे कार्य हेतु एक गिनी प्रदान किया, जिसे ले जाकर मैंने डाकघर में एक खाता खोल लिया। वे कहती हैं कि हमारी सहायता करने में ही जीवन की कुछ सार्थकता है! अहा बेचारी, वे भारत के बारे में सुनने आयी थीं, परन्तु मैंने पाया कि वे कभी कानवेंट में रह चुकी हैं, अत: मैं उनके साथ नियमों तथा संगठन के विषय में ही बातें करती रही।

मैंने श्री किंग का पत्र आपको दे दिया था, तो भी आपने असीरियोलॉजी तथा इजिप्टोलॉजी विषयक पुस्तकों की कोई तालिका नहीं भेजी है। वैसे उनके लिये अमेरिका से भी आर्डर भेजा जा सकता है और आपको मैस्पेरो की ... प्राप्त हो जायगी।

आज सुबह मैं श्रीमती कोलस्टन के नाम लिखित मिस पोस्टर का एक पत्र पढ़कर बड़ी ताजगी महसूस कर रही हूँ। उन्होंने लिखा है, ''जब रमाबाई यहाँ आयी थी, तो मैं एक सच्ची महिला को देखने और उनके कार्य के विषय में सुनने की आशा में उनका व्याख्यान सुनने गयी थी। परन्तु जब मैंने उस भद्दी झगड़ालू महिला को देखा, जिसके पास केवल विषवमन के सिवाय अन्य कुछ भी न था, तो उससे मेरी जो अरुचि हुई, उसका तुम सहज ही अनुमान कर सकती हो।'' इससे मेरी सामरिक नासिका को भले ही एक आसन्न युद्धाग्नि की गन्ध न मिली हो, तो भी नि:सन्देह इससे मुझे लौकिक तृप्ति तो अवश्य मिली है।

शेष भाग पृष्ठ ३९ पर

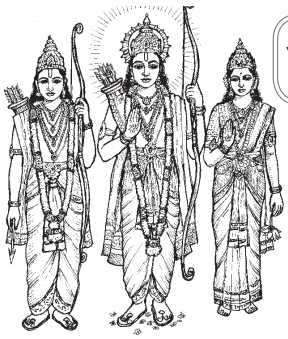

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (५/६)

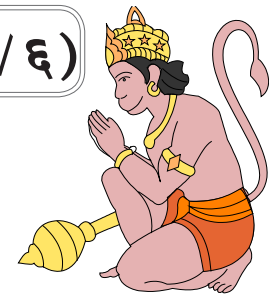

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

साधना-पथ सन्दर्भ में विभीषण के चरित्र को, विभीषण की शरणागति को केन्द्र बना करके कुछ बातें आपके समक्ष रखी जा रही हैं। व्यक्ति अगर यह अनुभव करता है कि वह अपनी क्षमता से, अपने पुरुषार्थ से, अपने साधनों के द्वारा दुर्गुणों को परास्त कर सकता है या जीवन में पूर्णता प्राप्त कर सकता है, तो ऐसा करने के लिये वह स्वतन्त्र है। पर किसी व्यक्ति को यदि ऐसा प्रतीत होता हो कि दुर्गुणों के विनाश की इच्छा होते हुए भी वह पूरी तरह से उन्हें मिटाने में सक्षम नहीं है, वह केवल अपने बल से, अपने पुरुषार्थ से बुराइयों को पूरी तरह से मिटा नहीं सकता, तो स्वाभाविक है कि उसके अन्त:करण में शरणागति की भावना का उदय होता है।

रामचरितमानस में गोस्वामीजी ने ज्ञानदीपक के प्रसंग में जिस मार्ग का वर्णन किया, वह मार्ग पुरुषार्थ का मार्ग है। यद्यपि वहाँ भी गोस्वामीजी स्पष्ट कह देते हैं कि साधन-पथ में जो व्यक्ति पुरुषार्थ करता है या उसकी जो प्रवृत्ति होती है, वह प्रवृत्ति तो वस्तुत: प्रभु की कृपा से ही मनुष्य के हृदय में, साधु के हृदय में उत्पन्न हो सकती है। किन्तु उसके बाद मानो दो भिन्न-भिन्न धाराएँ हैं। जैसे रामचरितमानस में एक बड़े और छोटे पुत्र की बात कही गई है। ज्ञानी को भगवान श्रीराम ने यह कहा कि वे मेरे बड़े पुत्र हैं और भक्त मेरे छोटे पुत्र हैं। तो बड़े और छोटे पुत्र के व्यवहार में संसार में भी जो भिन्नता है, वह स्पष्ट है। जब कोई पुत्र अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है, तो पिता उसे कुछ संपत्ति दे देता है और उसे अवसर देता है कि वह अपने पुरुषार्थ के द्वारा उन्नति करे। किन्तु उसका जो नन्हा बालक है, उससे तो उस तरह का व्यवहार वह नहीं करता है। नन्हें बालक के लिये तो उसे निरन्तर उसके संरक्षण के लिये, उसके प्रत्येक योग-क्षेम के लिये उसे सावधान रहना है। इसका अभिप्राय है कि ज्ञानी को भगवान प्रारम्भ में कृपा तो दे देते हैं, पर बाद में कह देते हैं कि तुम्हारे इस व्यापार में जो हानि-लाभ हो, उसको अब तुम जानो। इसलिये ज्ञान मार्ग या कोई भी मार्ग ऐसा हो नहीं सकता है कि जिसके मूल में भगवान की कृपा आवश्यक न हो। श्रद्धेय स्वामीजी महाराज ने विवेक चूडामणि की ओर संकेत करते हुए जो वाक्य कहा था कि सबसे पहले मनुष्यत्वं अर्थात् मनुष्य-शरीर प्राप्त होना ही एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। पर यह मनुष्य शरीर कैसे प्राप्त होता है? रामचरितमानस की मान्यता यही है कि यह मानव शरीर किसी साधना का परिणाम नहीं हो सकता। इसका सीधा-सा तात्पर्य यह है कि जब अन्य शरीरों से कोई साधना हो ही नहीं सकती, पशु के रूप में, पक्षी के रूप में, अन्य योनियों में कोई साधना नहीं हो सकती है, तो फिर मनुष्य शरीर साधना का परिणाम कैसे होगा? मनुष्य शरीर को गोस्वामीजी इस रूप में स्वीकार करते हैं –

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही।। ७/४३/६

ईश्वर जब किसी पर अत्यन्त कृपा करता है, तब उसे मनुष्य शरीर दे देता है। मनुष्य शरीर में जो साधन की क्षमताएँ हैं, वे भी ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होती हैं। किन्तु उसके बाद, यह स्वाभाविक है कि कुछ लोगों के हृदय में यह बात होती है कि नहीं, हम तो अपनी योग्यता से, पुरुषार्थ से ही सर्वोच्च स्थिति प्राप्त करते हैं। हमारे यहाँ ज्ञान के सन्दर्भ में पुरुषार्थ का भी संकेत किया गया है।

मान लीजिए मनुष्य शरीर प्राप्त हो गया, तो उसके बाद चाहिए मुमुक्षा, मोक्ष की आकांक्षा। उस आकांक्षा के लिए श्रद्धा चाहिए। वह श्रद्धा भी ईश्वर की कृपा से आती है। किन्तु उसके बाद आपको करना है। जैसे किसी ने आपको गाय दे दी। गोदान की तो हमारे यहाँ बड़ी परम्परा है। अब गोदान के बाद उस गाय के भरण-पोषण की चिन्ता आपको करनी है। ज्ञान के सन्दर्भ में गोस्वामीजी कहते हैं कि श्रद्धा

की जो गाय है, वह तो भगवान अपनी कृपा से दे देते हैं, पर बाद में सारा कार्य तो स्वयं ही करना है। इसलिए ज्ञान दीपक का श्रीगणेश होता है –

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।

जौं हरि कृपाँ हृदयँ बसि आई।। ७/११६/९

उस श्रद्धा के पश्चात् जो साधन है, वह पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। गोस्वामीजी ने ज्ञान के दीपक जलाने की जिस प्रक्रिया का वर्णन किया है, उसमें तो एक-एक सद्गुण इतने दुर्लभ हैं, इतने कठिन हैं –

बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ।। ७/११७ (क)

इसके सन्दर्भ में कल कुछ संकेत किया गया था, पर समस्या यहीं समाप्त नहीं हो गई।

तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।। ७/११७ (ख)

पर उस घृत के लिए दिया चाहिए, तब उस दिये में ज्ञान का दीपक जलेगा, वह दीपक कौन सा है? बोले –

चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ।। ७/११७ (ख)

समता का दियाटी हो। दियाटि दीपक रखने के स्थान को कहते हैं। दीपक को यदि आप किसी टेढ़े स्थान पर रख दें, तो आप देखेंगे कि तेल या घी नीचे की ओर बह जायेगा। इसलिये जहाँ पर दिया रखा जायेगा, वह स्थान बिलकुल समतल होना चाहिए। चित्त में जब समत्व का उदय हो, तब –

तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।। ७/११७ (ख)

उसमें जो बत्ती चाहिए, रूई चाहिए, वह कौन-सी है?

तीनि अवस्था तीन गुन तेहि कपास तें काढ़ि।

तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि।। ७/११७ (ग)

तीन अवस्था और तीन गुणों से तुरीयावस्था की बत्ती आप बनायें, तब वह दीपक जलेगा। उसके बाद –

तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा।

उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा।। ७/११७ (घ)/४

उस प्रकाश में बैठकर बुद्धि चित्-जड़ ग्रंथि खोलना चाहती है। प्रकाश हो गया। बेचारा सुनने वाला आतंकित हो गया। पर चलो, अब तो दिया जला न ! अब तो कोई संकट नहीं है। बोले नहीं, नहीं, अभी संकटों से मुक्ति नहीं है। अब वह वृत्ति जो जली, वह दीपक जो जला, वह कौन-सा है? बोले

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा।

दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।

आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।

तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।

प्रबल अबिद्या कर परिवारा।

मोह आदि तम मिटइ अपारा।।

तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा।

उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा।। ७/११७ (घ)/१-४

पर अचानक लिखने लगे कि जब वह चित्-जड़ ग्रन्थि का उच्छेद करने लगता है, तब उस समय क्या होता है? बोले, तब उस समय अब नया प्रलोभन आया।

रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई।

बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई।। ७/११७ (घ)/७

ऋद्धि-सिद्धि कई प्रकार से बुद्धि को लोभ दिखाती रहती हैं। उस समय फिर से एक बार, श्रद्धेय स्वामीजी ने जैसा संकेत किया कि वैराग्य हो जाने के बाद भी निश्चिन्त हो जाने की आवश्यकता नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि उस वैराग्य में शिथिलता नहीं आयेगी और कभी दिखाई भी देता है। कभी-कभी तो बड़ा आश्चर्य होता है मुझे। कोई विशेषता तो नहीं, पर मैं सौभाग्यशाली ही रहा हूँ कि मुझे आश्रमों में रहने का अवसर मिला। किन्हीं आश्रमों में देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता था कि जो लोग घर-बार छोड़कर आ गये हैं, उनमें भी कभी-कभी कमण्डलु, तो कभी कम्बल को लेकर झगड़ा हो जाता था। बड़ा विचित्र लगता था कि यह कैसी विचित्र वृत्ति हो सकती है कि –

कोटिहु जतन न जाई जनम जनम अभ्यास-निरत चित।

(वि.प. ८२)

करोड़ों-करोड़ों जन्मों का, करोड़ की संख्या भी छोटी है, अनगिनत जन्मों का संस्कार उस व्यक्ति के अन्त:करण में विद्यमान है। इस जन्म में वह जो अभ्यास कर रहा है, मान लीजिए दो चार जन्मों के अभ्यास का परिणाम हो, लेकिन उसे कोटि-कोटि जन्मों से विषय-सुख लेने का अभ्यास है, वह इतना अधिक प्रबल हो जाता है कि व्यक्ति चाहकर भी चित्त में जो विकारों का संस्कार है, उससे मुक्त नहीं हो पाता। इसलिए व्यक्ति को यह सोचकर निश्चिन्त नहीं हो जाना है कि आज हमारे जीवन में त्याग आ गया, तो वह त्याग सर्वदा बना रहेगा, वैराग्य आ गया, तो वैराग्य सर्वदा बना रहेगा। नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होता।

इसीलिए भरतजी के सन्दर्भ में कितनी एक मार्मिक बात

कही गई है ! जब वे चित्रकूट से लौटकर अयोध्या आए। उस चित्रकूट में श्रीभरत और भगवान राम को आप ज्ञानदीपक के सन्दर्भ में भी देख सकते हैं, भक्तियोग और कर्मयोग के सन्दर्भ में भी देख सकते हैं। उसका सांकेतिक अर्थ यह है कि ज्ञानदीपक में भी मन, बुद्धि अहंकार से ऊपर उठकर चित्त की भूमि में ही यह समाधान होता है। श्रीभरत की जो यात्रा है, वह भी चित्रकूट की होती है। मैं देख रहा हूँ, कुछ लोग शायद कुछ थके-से हो जा रहे हैं। तो आप लोग थोड़ा और थक लीजिए, साधना का मार्ग तो थोड़ा थकाने वाला होगा ही। गोस्वामीजी कहते हैं कि श्रीभरत भगवान श्रीराम के ही समान हैं। उसका आध्यात्मिक अभिप्राय है कि जीव और ब्रह्म, चाहे उसको उपनिषद की भाषा में कहें, तो वे दोनों नित्य सखा हैं। भगवान राम कहते ही हैं कि भरत में और मुझमें कोई अन्तर है ही नहीं। वेदान्तशास्त्र भी कहता है कि 'जीवो ब्रह्मैवनापरः'। किन्तु साधना का पथ क्या है? साधना का पथ यह है कि श्रीभरत चित्रकूट जाने के लिये व्यग्र हैं। उनके सामने राज्य का प्रलोभन है। चारों ओर से आग्रह किया जा रहा है। किन्तु वे उन सारे प्रलोभनों को अस्वीकार करके चित्रकूट जाते हैं। गोस्वामीजी तो यही कहते हैं कि चित्रकूट चित्त है –

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु। १/३१

राम की कथा मंदाकिनी है और चित्त ही चित्रकूट है। उसका अर्थ यह है कि आप चित्त की भूमि में कथा सुन रहें हैं, तो मन की भूमि में भी कथा सुनी जाती है, बुद्धि की भूमि में भी कथा सुनी जाती है, पर अहंकार की भूमि में तो सुनी ही नहीं जाती है। अहंकारी क्या सुनेगा? यदि वह बैठेगा भी, तो खण्डन-मण्डन ही सोचता रहेगा कि वक्ता ने क्या सही कहा, क्या गलत कहा, कौन-सा वाक्य शुद्ध कहा, कौन-सा अशुद्ध कहा। तो मन की भूमि में जो बैठा हुआ है, वह तो मनोरंजन के लिये ही सुनेगा। उसे तो बस कोई बढ़िया स्वर में कोई पंक्ति सुनने को मिल जाय, तो वह झूमने लगता है, उसे लगेगा कि बड़ा आनन्द है कथा में। गोस्वामीजी ने कहा कि जो विषयी है, वह तो मन की भूमि में ही सुनेगा। उसको कथा क्यों अच्छी लगती है? उसका मन और कान, ये दोनों उसके केन्द्र हैं।

बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा।
श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा।। ७/५२ (ख)/४

सुनकर बड़ा आनन्द आया, कितना मधुर स्वर है। नहीं तो कथा में जाकर दो-चार चुटकुले ही सुन आए। थोड़ा गाना-बजाना हो गया, मधुर स्वर का रस मिल गया, प्रसन्न हो गये, तो यह मन की भूमि है। यह भी अच्छा है, यह भी एक आनन्द है। चलो, मन की भूमि में कम-से-कम किसी बुरी वस्तु से मनोरंजन नहीं किया, गाने-बजाने में किसी सांसारिक वर्णन को न सुनकर भगवान के गुणों का वर्णन सुन लिया, तो यह मन की भूमि भी सार्थक हो गई। पर वह सर्वश्रेष्ठ भूमि नहीं है। वह सबसे निम्न धरातल है।

दूसरी भूमि बुद्धि की भूमि है, जहाँ साधक बैठकर सुनता है। विषयी सुनता है मन की भूमि में बैठकर और साधक मन के साथ-साथ बुद्धि की भूमि पर भी सुनता है, क्योंकि वह जानता है कि हम जो कुछ सुन रहे हैं, वह केवल मनोरंजन के लिये ही नहीं है। उसका कोई उद्देश्य है। जो बुद्धि की भूमि में बैठकर सुन रहा है, वह साधक है। बुद्धि की भूमि के बाद भी वही समस्या आ जाएगी। बुद्धि के द्वारा बात समझ में आ गई, पर उसके बाद फिर वही – यत् पठितं तत् गुरवे निवेदितम्। एक सज्जन नित्य पढ़ने जाते थे, पर बाद में उनको कुछ याद नहीं रहता था। तो किसी ने पूछा, आप नित्य नियम से जाते हैं, क्या पढ़ते हैं, कुछ सुनाइए। उन्होंने कहा, मैं जितना पढ़ता हूँ, रोज उसे गुरुजी के चरणों में चढ़ा देता हूँ – यत् पठितं तत् गुरवे निवेदितम्।

बुद्धि में यह वृत्ति है कि सुना – वाह ! वाह ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा और कुछ समय बाद कुछ भी याद नहीं। इसलिए बहुत बढ़िया बात आई। हनुमानजी की प्रशंसा दो व्यक्तियों ने की। एक तो रावण ने की, दूसरी लंकिनी ने। दो तरह के श्रोता होते हैं। एक रावण की तरह और एक लंकिनी की तरह। हनुमानजी का एक मुक्का लंकिनी को लगा, तो मुँह के बल गिर पड़ी और मुँह से रक्त निकलने लगा। हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी –

पुनि संभारि उठी सो लंका।
जोरि पानि कर बिनय ससंका।
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा।
चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा।।
बिकल होसि तैं कपि के मारे।
तब जानेसु निसिचर संघारे।।
तात मोर अति पुन्य बहूता।
देखेउँ नयन राम कर दूता।। ५/३/५-८
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।। ५/४

(क्रमशः)

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१३)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

घुड़सवारी

इसी प्रकार एक गाँव में पहुँचने पर वहाँ के जमींदार के दीवान ने कहा, ''दिन में बड़ी गर्मी है और रात चाँदनी है, अत: रात में चलना ही अच्छा रहेगा।'' उन्होंने एक घोड़ा और सिपाही साथ दे दिया। उस गाँव से अगले गाँव के बीच एक बहुत बड़ा मैदान है। वहाँ डकैतों का भी भय बना रहता है। एक महीने पूर्व एक कन्या अपने मायके से ससुराल जा रही थी। डकैतों ने इसी मैदान में उसकी हत्या करके उसका सब कुछ छीन लिया था। आधी रात के समय, जब हम लोग मैदान के बीचो-बीच पहुँच चुके थे, तभी सिपाही अचानक हड़बड़ा कर खड़ा हो गया और इधर-उधर देखने लगा। पूछने पर बोला, ''एक बदमाश पेड़ की आड़ में छिपा हुआ है।'' मेरे मन में आशंका हुई, परन्तु सिपाही मुझे आश्वस्त करता हुआ बोला, ''भय की कोई बात नहीं है, मैं भी उन्हीं लोगों के गिरोह का हूँ, मेरे रहते कोई कुछ नहीं करेगा।'' मैंने पूछा, ''तुम कैसे उन लोगों के गिरोह से जुड़ गये?'' वह बोला, ''महाराज, ''वैसा न हो, तो कैसे चलेगा? जमींदार की कचहरी से जो वेतन मिलता है, उससे भला कैसे काम चलेगा? इसीलिए हम लोगों को भी कभी-कभार उनके गिरोह में शामिल होना पड़ता है।''

मैं 'त्राहि-त्राहि' करता हुआ अपने इष्टदेव का नाम जपने लगा। डकैत ही मेरा अंगरक्षक था। परन्तु सिपाही मुझे अभय देने लगा। भोर के समय एक गाँव में पहुँचकर धर्मशाले में ठहर गया।

सिपाही शिकायत के स्वर में कहने लगा, ''साधु के साथ रास्ता चलना बड़ा ही खराब है। साथ में आप साधु हैं, नहीं तो क्या मेरा घोड़ा भूखा रह जाता? उस मकान के भीतर घास है। आप नहीं रहते, तो मैं अनायास ही चहारदीवारी फाँदकर चोरी करता।''

कच्छ के लोग साधुओं के प्रति अत्यन्त भक्ति रखते हैं। घर में साधु के आने पर बिल्कुल कुटुम्ब-समागम के समान खाने-पीने का आयोजन होता है। गाँव में साधु के आने पर गृहस्थ लोग रास्ते में ही खींचा-तानी शुरू कर देते हैं। एक कहता है कि मेरे घर चलिये और दूसरा कहता है कि नहीं, मेरे घर चलिये।

माण्डवी में स्वामीजी का दर्शन

इस प्रकार कभी ऊँट, तो कभी घोड़े की पीठ पर चढ़कर माण्डवी तक पहुँच गया। समाचार मिला कि स्वामीजी एक भाटिया के मकान में ठहरे हुए हैं। मैं तत्काल वहीं जा पहुँचा।

देखा कि स्वामीजी का अब पहले वाला रूप नहीं रहा। वे अपने रूप-लावण्य से कमरे को आलोकित करते हुए बैठे हैं, परन्तु मुझे देखते ही चौंक गये। उन्होंने रास्ते का सारा वृत्तान्त सुना। सुनकर स्वामीजी के मन में भय हुआ, ''गंगाधर जब इतने संकटों में पड़ता हुआ, इतनी विपत्तियों को पार करता हुआ, प्राणों की ममता तक छोड़कर मेरे पास आ पहुँचा है, तो अब वह मेरा साथ नहीं छोड़ेगा।'' वे बोले, ''मैंने एक संकल्प किया है, तुम लोगों (गुरुभाइयों) के साथ रहने से मैं उसे कार्य रूप में परिणत नहीं कर सकूँगा।''

परन्तु मैंने उनकी कोई भी बात नहीं मानी। अन्त में, स्वामीजी बोले, ''देख, मैं दुश्चरित्र हो चुका हूँ, मेरा साथ छोड़ दे।'' मैं बोला, ''तुम पतित भी हो गये, तो क्या हुआ ! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। उसका तुम्हारे चरित्र के साथ क्या सम्बन्ध है? परन्तु मैं तुम्हारे कार्य में बाधा नहीं डालूँगा। मेरा मन तुम्हें देखने को व्याकुल हुआ था, अब वह आकांक्षा मिट चुकी है। अब तुम अकेले जा सकते हो।''

स्वामीजी मेरी बात सुनकर आह्लादित हुए। अगले दिन वे भुज चले गये। मैं उनके साथ नहीं गया, अगले दिन गया। स्वामीजी अब निश्चित रूप से समझ गये थे कि अब मैं उनकी स्वाधीनता में हस्तक्षेप नहीं करूँगा।

साधु आनन्द-आश्रम

भुज में स्वामीजी ने मुझसे कहा, ''राजा जिस प्रकार हम लोगों के प्रति प्रेमभाव दिखा रहे हैं, यदि हम लोग अधिक दिन यहाँ रहे, तो इससे बहुत-से लोगों की आँखों में गड़ने लगेंगे । पच्चीस वर्ष पूर्व आनन्द-आश्रम नामक एक बंगाली संन्यासी ने भुज में आकर राज्य की विशेष उन्नति की थी । उस समय राजा का नियम था कि वे गाँवों को पट्टे पर दे देते । जो लोग उन्हें पट्टे पर लेते, वे प्रजा पर अत्याचार करके पट्टे की देय राशि की अपेक्षा अनेक गुना वसूली कर लेते थे । इसके कारण प्रजा विशेष रूप से पीड़ित महसूस करती थी । आनन्द-आश्रम ने राजा को सलाह देकर वह प्रथा बन्द करा दी और अंग्रेजों के समान अच्छे नियम लागू करा दिये । अब भी उन्हीं के द्वारा जारी कराये गये नियमों के अनुसार राज्य चल रहा है । परन्तु आनन्द-आश्रम कर्मचारियों की आँखों के काँटे बन गये । उनके शत्रुओं ने भोजन में विष मिलाकर उनकी हत्या करा दी । हम लोगों की भी वही दशा हो सकती है । चलो, कल ही हम लोग इस स्थान से विदा ले लेंगे ।''

स्वामीजी के साथ विच्छेद

दोनों ने भुज से माण्डवी में आकर करीब एक पखवारा निवास किया । इसके बाद स्वामीजी पोरबन्दर की ओर चले गये । उनके जाने के पाँच-सात दिनों बाद मैं भी पोरबन्दर गया । वहाँ फिर हम दोनों की भेंट हुई ।

स्वामीजी वहाँ शंकर पाण्डुरंग के घर पर अतिथि हुए थे । उन दिनों वे ही पोरबन्दर (सुदामापुरी) के प्रशासक थे । स्वामीजी कहते कि उनके समान वेदों का विद्वान उन्होंने पूरे भारत में नहीं देखा । अथर्ववेद का भाष्य दुर्लभ हो जाने के कारण उन्होंने स्वयं ही उसे प्रकाशित किया । स्वामीजी उनके साथ संस्कृत में बातें करने का अभ्यास करके थोड़े ही दिनों में पारंगत हो गये ।

पोरबन्दर से स्वामीजी जूनागढ़ और मैं काठियावाड़ की ओर चल पड़ा । इसके बाद मैं जेतपुर, गोण्डल तथा राजकोट होते हुए जामनगर गया । जामनगर के रास्ते में मुझे एक भयानक तूफान देखने को मिला था । जामनगर में मैंने साल भर निवास किया ।

जामनगर (या नवानगर)

काठियावाड़ की स्मृति के विस्तारित विवरण के बीच, इसी स्थान पर १८९३ ई. में वैदिक शिक्षा के क्षेत्र में अपने प्रयास तथा अनुभव की बात लिपिबद्ध कर लेना अप्रासंगिक नहीं होगा । जामनगर में सेवाव्रत आरम्भ हुआ, राजपूताना की खेतड़ी में उसकी क्रमोन्नति हुई और मुर्शिदाबाद में उसका प्रसार तथा चरम परिणति हुई ।

जामनगर में आकर मैंने प्रारम्भ के तीन-चार महीने वैद्यराज मणिशंकर विट्ठलजी का अतिथि होकर उनके 'धन्वन्तरि-धाम' नामक भवन में बिताये । विट्ठल लोग नागर ब्राह्मण हैं और वैद्यकी का व्यवसाय करते हैं ।

जामनगर में तीन अग्निहोत्री गृहस्थ निवास करते थे । उनमें बाबाभाई वैद्य प्रमुख थे । ये नागर ब्राह्मण जाति के, महाविद्वान तथा उदयपुर के दरबार में राजवैद्य थे । उनका चातुर्मास्य याग[१] इस धन्वन्तरी-धाम में ही बड़े समारोह के साथ सुसम्पन्न हुआ । काठियावाड़ तथा उदयपुर के अनेक सम्भ्रान्त लोग उसमें निमन्त्रित होकर आया करते थे । उनमें उदयपुर के महाराणा फतेसिंहजी के भाई सुरथसिंहजी तथा भावनगर के दीवान उदयशंकर के पौत्र के साथ मेरा परिचय हुआ ।

बहुत दिनों से मेरी चरक तथा सुश्रुत-संहिता पढ़ने की इच्छा थी । धन्वन्तरी-धाम में पहुँचते ही मैंने सुश्रुत-संहिता पढ़ना शुरू किया । कलकत्ते से प्रकाशित जीवानन्द विद्यासागर द्वारा प्रकाशित चरक-सुश्रुत-संहिता की टीका उपलब्ध न होने के कारण उदयपुर-अधिपति मेवाड़ के महाराणा द्वारा प्रकाशित विशाल 'शब्दार्थ-चन्द्रिका' नामक कोष ही मेरा एकमात्र अवलम्बन था । **(क्रमशः)**

---

१. दशहरे से कार्तिक पूर्णिमा तक परमहंस संन्यासी कहीं यात्रा नहीं करते, इसी अवधि को चातुर्मास्य कहते हैं ।

तुम लोगों में संगठन की शक्ति का नितान्त अभाव है । वही अभाव सब अनर्थों का मूल है । मिल-जुलकर कार्य करने के लिए कोई भी तैयार नहीं । संगठन के लिए सर्वप्रथम आज्ञा-पालन की आवश्यकता है ।

– स्वामी विवेकानन्द

जीवन के विकास में इच्छाशक्ति का महत्त्व

स्वामी ओजोमयानन्द
रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

लखनऊ से दिल्ली जा रही पद्मावती एक्सप्रेस से एक युवती के सोने के एक गहने को खींचने में विफल होकर लुटेरों ने उसे रेल से बाहर फेंक दिया और दूसरी ओर से आ रही रेलगाड़ी से उसका एक पैर कट गया। खून से लथपथ वह सारी रात वहीं पड़ी रही। फिर चिकित्सा के लिए उसे एम्स ले जाया गया। परिवारवाले उसकी इस स्थिति को देखकर रोते रहते थे। एम्स से छुट्टी मिलने के पश्चात् दिल्ली की एक संस्था ने उसे कृत्रिम पैर प्रदान किया। ऐसी स्थिति में उस युवती ने कुछ ऐसा करने की ठानी जो मिसाल हो जाये और उसने एवरेस्ट विजय करने का लक्ष्य बनाया। इसके बाद वह जमशेदपुर गई और वहीं एवरेस्ट विजय कर चुकी सुश्री बछेन्द्री पाल से मिली। उस युवती की इच्छाशक्ति को देखकर उन्होंने प्रशिक्षण दिया। तत्पश्चात् २१ मई को एवरेस्ट पर भारतीय पताका फहराकर वह युवती विश्व की पहली दिव्यांग महिला पर्वतारोही बन गई। वह दृढ़ इच्छा-शक्तिवाली युवती और कोई नहीं, स्वामी विवेकानन्द के भाव से अनुप्राणित रामकृष्ण संघ के एक गुरु श्रीमत् स्वामी गौतमानन्द जी महाराज की शिष्या पद्मश्री अरूणिमा सिन्हा थीं। इस कीर्तिमान के पश्चात् उन्होंने युवाओं को संदेश देते हुए कहा था कि विकलांगता हमारे शरीर में नहीं, बल्कि मन में होती है। वास्तव में अरूणिमाजी के एवरेस्ट विजय का मुख्य कारण उनकी इच्छा-शक्ति थी। आइए, हम इसी इच्छा-शक्ति का संक्षेप में विश्लेषण करें।

इच्छा-शक्ति क्या है?

इच्छा मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है और इस इच्छा को प्राप्त करने के पीछे जो शक्ति निहित हो, इनके समन्वय को ही इच्छा-शक्ति कहते हैं। यदि यही इच्छा-शक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में लग जाये, तो हमारा कल्याण हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द जी इस सन्दर्भ में कहते हैं, ''यंत्रचालित अति विशाल जहाज और महाबलवान रेल का इंजन जड़ हैं, वे हिलते हैं और चलते हैं, परन्तु वे जड़ हैं। और वह जो दूर से नन्हा-सा कीड़ा अपने जीवन की रक्षा के लिये रेल की पटरी से हट गया, वह क्यों चैतन्य है? यन्त्र में इच्छा-शक्ति का कोई विकास नहीं है। यन्त्र कभी नियम का उल्लंघन करने की कोई इच्छा नहीं रखता। कीड़ा नियम का विरोध करना चाहता है और नियम के विरुद्ध जाता है, चाहे उस प्रयत्न में वह सिद्धि लाभ करे या असिद्धि, इसलिये वह चेतन है। जिस अंश में इच्छा-शक्ति के प्रकट होने में सफलता होती है, उसी अंश में सुख अधिक होता है और जीव उतना ही ऊँचा होता है। परमात्मा की इच्छाशक्ति पूर्ण रूप से सफल होती है, इसलिए वह उच्चतम है।[१] ''संसार में हम जो सब कार्य-कलाप देखते हैं, मानव-समाज में जो गति हो रही है, हमारे चारों ओर जो कुछ हो रहा है, वह सब मन की ही अभिव्यक्ति है, मनुष्य की इच्छा-शक्ति का ही प्रकाश है। कलें, यन्त्र, नगर, जहाज, युद्धपोत आदि सभी मनुष्य की इच्छा-शक्ति के विकास मात्र हैं।''[२] ''संसार में इच्छा-शक्ति ऐसी शक्ति है, जिसकी प्रशंसा हम जाने या अनजान में करते हैं। इच्छा-शक्ति की अभिव्यक्ति करने के कारण ही सती को संसार महान मानता है।''[३]

इच्छा-शक्ति को बलवती करने में कुछ सहायक कारक

लक्ष्य – एक युवक पढ़ाई-लिखाई में बहुत ही आलसी था। मित्रों के साथ अड्डेबाजी और मौज-मस्ती में ही समय गँवाया करता था। माता-पिता के बहुत समझाने पर भी उसकी इच्छा-शक्ति में कोई उन्नति नहीं होती थी। एक दिन अचानक उसके पिता की हृदयाघात से मृत्यु हो गई। घर में खाने के लाले पड़ गये। तब उसे किसी कम्पनी में काम करना पड़ा। पर वह अपनी आय से संतुष्ट नहीं था। अब वह समझ गया था कि उसे अपनी पढ़ाई पूरी करनी होगी। परन्तु अनेक प्रयास करने पर भी वह सफल नहीं हुआ। ऐसे समय में उसे एक आश्रम से यह आश्वासन मिला कि यदि वह परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुआ, तो आश्रम उसका पूरा खर्च वहन करेगा। तब उसकी इच्छाशक्ति स्वत: ही बढ़ गई, क्योंकि उसके सामने एक लक्ष्य था और उसे पाने के लिए वह स्वाभाविक रूप से कड़ी मेहनत करने लगा और सफल भी हुआ। इस प्रकार परिस्थिति ने उस युवक के समक्ष एक लक्ष्य रखा और उसकी इच्छा-शक्ति बढ़ गई। तो क्या हम परिस्थिति के लिए प्रतीक्षा करें? नहीं, यदि इच्छा-शक्ति में इतनी ही शक्ति है, तो क्यों न हम अपनी

परिस्थिति स्वयं निर्मित करें और स्वयं अपने लक्ष्य बनायें। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हमारा लक्ष्य जितना बड़ा होगा, हमारी इच्छा-शक्ति भी उतनी ही बड़ी होगी।

लक्ष्य का निर्धारण – कुछ लोगों को ऐसा लग सकता है कि उनमें कभी भी दृढ़ इच्छा-शक्ति नहीं आ सकती। परन्तु यह सत्य नहीं है। एक सामान्य विद्यार्थी भी अपने विषय में यही सोचता है, पर परीक्षा का समय आते ही उसकी इच्छाशक्ति स्वत: बढ़ जाती है। उस समय समस्त मनोरंजन, मौज-मस्ती, सिनेमा आदि कितने ही प्रलोभन उसकी इच्छा-शक्ति को डिगा नहीं पाते। अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि जब लक्ष्य की समय-सीमा निर्धारित हो जाये, तो हमारी इच्छा-शक्ति स्वत: हमें बल प्रदान करती है। तब वास्तव में इच्छा-शक्ति हमारी शक्तियों को केन्द्रित कर हमें सशक्त कर देती है, हमें अपने लक्ष्य पर एकाग्र कर देती है।

इच्छा – इच्छाशक्ति की वृद्धि के लिए सर्वप्रथम हमारी इच्छा का दृढ़ होना आवश्यक है। यदि हमारी इच्छाएँ और लक्ष्य बार-बार बदलते रहे, तो हम कभी अपनी इच्छा-शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकेंगे। अत: हमें अपने व्यक्तित्व को ऐसा गढ़ना चाहिए कि हम अपने लक्ष्य से न डिगें। स्वामी विवेकानन्द जी इसका अनुमोदन करते हुए कहते हैं, ''इच्छाशक्ति संसार में सबसे अधिक बलवती है। उसके सामने दुनिया की कोई चीज नहीं ठहर सकती, क्योंकि वह साक्षात् भगवान से आती है। विशुद्ध और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। मनुष्य की यह इच्छाशक्ति चरित्र से उत्पन्न होती है और वह चरित्र कर्मों से गठित होता है। अतएव जैसा कर्म होता है, इच्छाशक्ति की अभिव्यक्ति भी वैसी ही होती है। संसार में प्रबल इच्छाशक्ति-सम्पन्न जितने महापुरुष हुए हैं, वे सभी धुरन्धर कर्मी दिग्गज आत्मा थे। उनकी इच्छा-शक्ति ऐसी जबरदस्त थी कि वे संसार को भी उलट-पुलट सकते थे।''[५]

आत्मविश्वास या श्रद्धा – जिसमें जितना आत्मविश्वास होता है, वह उतना ही इच्छा-शक्तिसम्पन्न होता है। स्वामी विवेकानन्द जी अपने आधुनिक सन्देश में यही कहते हैं, ''हमारे देश के लिए इस समय आवश्यकता है, लोहे की तरह ठोस मांस-पेशियों और मजबूत स्नायु वाले शरीरों की। आवश्यकता है ऐसी अदम्य इच्छा-शक्ति की, जो ब्रह्माण्ड के सारे रहस्यों को भेद सकती हो। यदि यह कार्य करने के लिये अथाह समुद्र के मार्ग में जाना पड़े, तो भी हमें यह काम करना ही पड़ेगा। यही हमारे लिए परम आवश्यक है और इसका आरम्भ, स्थापना और दृढ़ीकरण अद्वैतवाद अर्थात् सर्वात्मभाव के महान आदर्श को समझने तथा उसके साक्षात्कार से ही सम्भव है। श्रद्धा ! श्रद्धा ! अपने आप पर श्रद्धा, परमात्मा में श्रद्धा, यही महानता का एक मात्र रहस्य है।[६]

चुनौतियाँ स्वीकार करना – जीवन में आने वाली चुनौतियों को स्वीकार करने का भाव यदि हृदय में हो, तो इच्छा-शक्ति स्वयं दौड़ी चली आती है। सेना के सिपाहियों को सदैव चुनौतीपूर्ण कार्य ही दिए जाते हैं। इसके लिए उन्हें जीवन-मृत्यु के बीच में भी खेलना पड़ता है, परन्तु हृदय में राष्ट्रप्रेम हेतु वे सदैव कठिन-से-कठिन चुनौतियों को स्वीकार करने को तत्पर रहते हैं। इसलिये उनकी इच्छा-शक्ति अत्यन्त दृढ़ होती है।

धुन सवार होना – अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का संघर्ष अत्यन्त आवश्यक है, पर यदि किसी में यह धुन सवार हो जाये कि उसे अपने लक्ष्य को पाना ही है, तो इच्छाशक्ति की वृद्धि स्वत: हो जाती है। यह धुन किसी चुनौती या प्रतिस्पर्धा के कारण हो या लक्ष्य को पाने की व्याकुलता के कारण हो, पर इससे इच्छा-शक्ति प्रबल हो जाती है। जैसे कोई व्यक्ति यूँ ही दौड़ रहा हो, उस समय किसी को दौड़ में हराने की धुन सवार हो जाये, तो वह उससे अधिक तेजी से दौड़ने लगेगा। यदि किसी के मन में विश्व-कीर्तिमान स्थापित करने की धुन सवार हो जाये, तो उसकी इच्छा-शक्ति अत्यन्त प्रबल हो जायेगी।

सकारात्मकता – अत्यन्त ज्ञानी और कुशल व्यक्ति भी सकारात्मकता के अभाव में विषम परिस्थितियाँ आने पर टूट जाते हैं और अपना सारा ज्ञान भूल बैठते हैं, वहीं सकारात्मकता इच्छाशक्ति को बल प्रदान करती है और इच्छा-शक्ति निराशा को आशा में बदल देती है। यहाँ तक कि असफलता कभी इच्छा-शक्ति को प्रभावित नहीं करती, बल्कि असफलता के पश्चात् आनेवाली नकारात्मकता ही इच्छा-शक्ति को कमजोर बना देती है। अन्यथा कुछ लोग असफल होकर अपनी असफलता को ही अपनी ढाल बना लेते हैं। वे कहते हैं, मैं अब समझ चुका हूँ कि मैं क्यों असफल हुआ और मैं उसे नहीं दोहराऊँगा। अत: हमें अपनी

सोच को सकारात्मक बनाना होगा।

मन और एकाग्रता – जिसकी एकाग्रता जितनी तीव्र होगी, उसकी इच्छा-शक्ति भी उतनी ही तीव्र होगी। इसके लिये हमें अपने मन को समझना होगा, क्योंकि मन हमें बहुत धोखे देता है और उसके धोखे में आकर हम मन की शक्तियों का अपव्यय करने लगते हैं। अत: बिखरी हुई मन की शक्तियों को एक लक्ष्य पर केन्दित कर हम अपनी इच्छा-शक्ति को बढ़ा सकते हैं।

एकाग्रता बढ़ाने के लिये हम जप और ध्यान की सहायता भी ले सकते हैं, परन्तु यह सदैव एक योग्य गुरु के निर्देशानुसार, उनकी देखरेख में होना चाहिए। क्योंकि गलत पद्धति से ध्यान करने से क्षति भी हो सकती है। स्वामी विवेकानन्द जी मन को वश में करने के लिए एक और उपाय बताते हैं, ''मन जितना निर्मल होगा, उसे वश में करना उतना ही सरल होगा। यदि तुम उसे वश में रखना चाहो, तो मन की निर्मलता पर जोर देना होगा।''[७]

आत्मनियंत्रण – एक निर्धारित लक्ष्य को पाने के प्रयासों के बीच भी जीवन में विभिन्न प्रलोभन आते हैं, जो हमारी इच्छा-शक्ति को कमजोर बना देते हैं। अत: ऐसे समय में व्यक्ति को उन प्रलोभनों को त्याग कर अपने लक्ष्य पर केन्द्रित होना चाहिए, अन्यथा उसका सफल होना असम्भव हो जायेगा। उदाहरणत: कोई युवक किसी विशेष परीक्षा की तैयारी कर रहा हो, ऐसे समय में उसके जीवन में कोई सुंदर युवती आ जाये। तब यदि युवक सुन्दरता के प्रलोभन में आकर अपने अनमोल समय को खो बैठे, तो उसकी इच्छा-शक्ति में कमी आ जायेगी। पर यदि वह इसके परिणाम के विषय में सोचते हुए आत्मनियंत्रण कर उस प्रलोभन से बच जाता है, तो अपनी लक्ष्य-प्राप्ति के लिए उस समय और शक्ति का प्रयोग कर सकता है। वास्तव में आत्मनियंत्रण के द्वारा हम शक्ति का संचय करते हैं और उस शक्ति को अपने लक्ष्य की ओर दिशा देकर अपनी इच्छा-शक्ति सबल कर सकते हैं। ''ब्रह्मचर्यवान मनुष्य के मस्तिष्क में प्रबल शक्ति – महती इच्छाशक्ति संचित रहती है।''[८]

नैतिकता – एक नैतिक कार्य करनेवाले व्यक्ति की इच्छा-शक्ति अधिक होती है। क्योंकि वह पवित्र और निष्कपट होता है। परन्तु अनैतिक कार्य करनेवाले व्यक्ति के मन में सदैव एक भय होता है कि उसने चोरी की है अथवा रिश्वत ली है, कहीं वह पकड़ा न जाये। इस प्रकार वह छोटे-से लाभ हेतु जीवन-भर अशान्ति की पोटली साथ लिए जीवन व्यतीत करता है। वह कभी कोई महान कार्य भी नहीं कर सकता। नैतिक व्यक्ति शान्तिमय जीवन व्यतीत करता है तथा समाज में भी सम्मान का पात्र होता है। अत: उसकी इच्छा-शक्ति एक उच्च आदर्श को समर्पित हो जाती है।

कभी-कभी अनैतिकता को नैतिकता का अथवा अधर्म को धर्म का चोला पहनाकर भी कुछ लोग अनैतिक कर्मों को दृढ़ इच्छा-शक्ति से कर बैठते हैं, जैसे कि आतंकवाद। इसके पीछे कुछ अधार्मिक तत्त्व होते हैं, जो नादान युवाओं के मन में विष घोलकर उसे अमृत का नाम देकर पिलाते रहते हैं, पर वे युवक स्वयं को पूर्ण नैतिक ही मानकर कर्म करते हैं। क्रोध में भी व्यक्ति की इच्छा-शक्ति प्रबल हो जाती है, पर ऐसी इच्छाशक्ति विध्वंसक होती है। हम दुर्गुणों के माध्यम से होने वाली विध्वंसक इच्छा-शक्ति को चरित्र-गठन तथा अपने सत् लक्ष्य में बाधक स्वीकार करके इनके प्रयोगों से बचने का विचार करते हैं। अत: हम यहाँ उस इच्छा-शक्ति के विषय में ही कह रहे हैं, जो हमें अनैतिक कार्यों से बचाने में हमारी सहायता करती है, हमें भीतर से बल देती है।

प्रार्थना – विषम परिस्थितियों में अथवा असम्भव लगनेवाली स्थिति में अथवा बारम्बार संस्कारवश होनेवाली स्थिति में यदि कोई आन्तरिक भाव से प्रार्थना करे, तो उसका हृदय पवित्र होता है और उसके भीतर की शक्ति जाग उठती है। आध्यात्मिक जगत के लगभग समस्त महापुरुष प्रार्थना के पक्षधर हैं। प्रार्थना में वह शक्ति छिपी हुई होती है, जो अंधेरे में मार्ग दिखा सकती है। परन्तु यह प्रार्थना मशीन या तोता रटंत की भाँति नहीं होनी चाहिए। वह सदैव स्वाभाविक, आन्तरिक और हृदय से होनी चाहिए।

इच्छा-शक्ति में बाधक कुछ कारक और समाधान

अस्वस्थता – रोगग्रस्त शरीर वाले व्यक्ति का मन भी रोगग्रस्त हो जाता है। अत: किसी व्यक्ति की इच्छा-शक्ति के लिए अच्छा स्वास्थ्य न्यूनतम आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति सदैव रोगग्रस्त हो, उसकी सारी शक्ति स्वयं को स्वस्थ करने में ही चली जाती है। ऐसी स्थिति में इच्छा-शक्ति स्वत: कमजोर पड़ जाती है। अत: हमें चाहिए कि हम सर्वप्रथम शरीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ हों। पौष्टिक आहार, पर्याप्त निद्रा तथा नियमित व्यायाम हमारे अच्छे स्वास्थ्य में

अत्यन्त सहायक होते हैं।

समय का दुरुपयोग – कई लोग ऐसा निर्णय करते हैं कि वे कल से कुछ विशेष कार्य प्रारम्भ करेंगे, परन्तु समय को सुनियोजित न कर पाने के कारण वे अपनी इच्छा-शक्ति का प्रयोग ही नहीं कर पाते। अधिकांशत: वे समय गँवाने के कारण असफल और निराश हो जाते हैं। ऐसे लोगों को सर्वप्रथम अपनी दिनचर्या बनाकर उसका कठोरता से पालन करना चाहिए।

अन्तर्द्वन्द्व – श्रीभगवान गीता में कहते हैं, 'संशयात्मा विनश्यति' अर्थात् संशय में रहने वाले का विनाश हो जाता है। वस्तुत: जब लक्ष्य या मार्ग या साधन के सम्बन्ध में द्वन्द्व चलने लगे अथवा जीवन में अन्तर्द्वन्द्व चल रहा हो कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं, तब व्यक्ति अपने लक्ष्य या कर्म का निर्धारण कर पाने तक अपनी इच्छा-शक्ति को उस ओर नहीं लगा पाता। अत: ऐसी स्थिति में व्यक्ति को अपने आदर्श रूपी तराजू में परिस्थिति को तौलकर देखना चाहिए अथवा किसी विश्वसनीय और निष्पक्ष शुभचिन्तक से विचार-विमर्श कर उचित निर्णय लेना चाहिए, जिससे वह अपनी इच्छा-शक्ति का प्रयोग कर अपने लक्ष्य को आगे बढ़ा सके।

चिन्ताएँ – जब व्यक्ति अतीत में कभी कोई भूल कर बैठता है, तो वह उस भूल के लिए पश्चात्ताप करने का प्रयास करता है। यदि वह यह निश्चय कर ले कि उससे जो भूल हुई है, वह उसे पुन: नहीं दोहरायेगा, तो वह श्रेष्ठ पश्चात्ताप करता है और प्रगति के पथ पर अग्रसर हो जाता है। परन्तु यदि वह उस भूल के पश्चात्ताप के लिये उस भूल की ही चिन्ता करता रहे कि मैंने ऐसा कर दिया, तब वह उस भूल के पुन: होने की सम्भावनाओं को और भी बढ़ा देता है। उसी प्रकार भविष्य की चिंताओं में डूबा व्यक्ति भी अपने वर्तमान दायित्व का निर्वहन न कर अपने भविष्य को नष्ट कर लेता है।

एक चिन्ताग्रस्त व्यक्ति कभी दृढ़ इच्छाशक्ति का प्रयोग कर लक्ष्य की ओर अग्रसर नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी इच्छा-शक्ति में कहीं-न-कहीं कमी रह ही जायेगी, क्योंकि उसकी शक्तियाँ बिखरी हुई होंगी। जैसे कुछ शक्तियाँ चिन्ताओं में, तो कुछ समस्याओं में, कुछ लक्ष्य की ओर आदि-आदि। अत: सर्वप्रथम उसे इच्छा-शक्ति का प्रयोग कर अपनी चिन्ताओं से मुक्ति पानी चाहिए, उसके उपरान्त ही अपने कर्तव्य-पथ पर अपनी इच्छा-शक्ति का प्रयोग करना चाहिए।

आलस्य – इच्छा-शक्ति का प्रयोग करना उन लोगों के लिये सरल हो जाता है, जो अपने धुन के पक्के होते हैं, पर आराम पसन्द लोगों के लिये अपनी इच्छा-शक्ति को बढ़ाना कठिन होता है। ऐसे लोग अपनी कुछ सामान्य कमजोरियों से ही छुटाकारा पाने में असमर्थ हो जाते हैं। ऐसे लोगों को अपनी इच्छा-शक्ति का प्रयोग छोटे-छोटे लक्ष्य से प्रारम्भ करना चाहिए। जैसे किसी को पढ़ने के समय भी मोबाईल में व्यस्त होने की आदत है, तो वे निश्चित करें कि वे एक घंटे मोबाइल स्पर्श नहीं करेंगे। इसी प्रकार वे पूरा पाठ एक बार न पढ़कर कुछ अंश पढ़ें और समझें, फिर धीरे-धीरे उस अंश से अधिक पढ़ने का लक्ष्य बनायें। इस प्रकार छोटी-छोटी सफलताओं के बाद वे अपना लक्ष्य और अधिक बढ़ायें, जिससे उनकी इच्छा-शक्ति में वृद्धि हो सके।

दिव्यत्व – इच्छा-शक्ति बढ़ाने का एक ब्रह्मास्त्र है

यदि हम अपने वास्तविक स्वरूप – अपनी आत्मा, अपने दिव्यत्व के विषय में सोचें, तो हमारी सारी दुर्बलता दूर हो जायेगी और इच्छा-शक्ति अत्यन्त प्रबल हो उठेगी। स्वामी विवेकानन्द जी इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं – ''आत्मा अनन्त, सर्वशक्ति-सम्पन्न और सर्वज्ञ है। इसलिए उठो, अपने वास्तविक रूप को प्रकट करो। तुम्हारे अन्दर जो भगवान है, उसकी सत्ता को ऊँचे स्वर में घोषित करो, उसे अस्वीकार मत करो। हमारी जाति के ऊपर घोर आलस्य, दुर्बलता और व्यामोह छाया हुआ है। ... तुम अपने को और प्रत्येक व्यक्ति को अपने सच्चे स्वरूप की शिक्षा दो और घोरतम मोह-निद्रा में पड़ी हुई जीवात्मा को इस नींद से जगा दो। जब तुम्हारी जीवात्मा प्रबुद्ध होकर सक्रिय हो उठेगी, तब तुम स्वयं ही शक्ति का अनुभव करोगे, महिमा और महत्ता पाओगे, साधुता आयेगी, पवित्रता भी स्वयं चली आयेगी – अर्थात् जो कुछ अच्छे गुण हैं, वे सभी तुम्हारे पास आ जायेंगे।''[१०] ○○○

सन्दर्भ सूत्र :

१. विवेकानन्द साहित्य ६/३५८-५९ **२.** वही, ३/५-६ **३.** वही, ८/१३१ **४.** वही, ५/११८-११९ **५.** वही, ३/६ **६.** वही, ५/८६ **७.** वही, ४/१८१ **८.** राजयोग - २२३ **९.** श्रीमद्भगवद्गीता ४/४० **१०.** विवेकानन्द साहित्य ५/८९

सारगाछी की स्मृतियाँ (७५)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – एक दिन आपने कहा था, इस काल में योगी होना कठिन है। क्या रामकृष्ण संघ में कोई भी वैसा योगी नहीं है?

महाराज – हमारे परमाध्यक्ष महाराज (स्वामी शंकरानन्द जी) और जितेन महाराज (स्वामी विशुद्धानन्द जी) एक श्रेणी के लोग हैं। जितेन महाराज निष्कलुष हैं – बराबर नि:संग ही रहते हैं। यतीश्वरानन्द स्वामी का भी खूब आध्यात्मिक जीवन है। वे एक दूसरे प्रकार के हैं। हमारे जो भी बड़े-बड़े साधु हैं, वे सुंसस्कृत परिवारों से आए हैं। प्राय: सभी अस्वस्थ हैं। उनका शरीर अच्छा नहीं है। अनादि महाराज (स्वामी निर्वेदानन्द) तो ब्लड प्रेशर (रक्तचाप), डायबिटीज अनेक रोगों से पीड़ित हैं।

बैरागी लोग ठाकुर को सामने रखकर संसार-भोग करते थे। हम लोग ठाकुर को दरकिनार कर संसार-भोग करते हैं, इसीलिए तुम लोगों को इतना सावधान रहने को कहता हूँ। किन्तु अच्छा होना ही होगा। इसीलिये ठाकुर आए हैं और स्वामीजी ने भी कहा है।

३०-०५-१९६१

प्रश्न – महाराज, माँ ने कहा है कि गृहस्थों का अन्न खा-खाकर बुद्धि मलिन हो गई है। इसका अर्थ क्या है?

महाराज – एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी परिव्राजक अवस्था में सायंकाल एक ब्राह्मण के घर उपस्थित हुए। ब्राह्मण ने बहुत सत्कार करके भोजन कराने के बाद पूजाघर के सामने बरामदे में उनके सोने का प्रबन्ध कर दिया। ब्रह्मचारी सोए हैं, किन्तु नींद नहीं आ रही है, अनेक प्रकार की चिन्ताएँ मन में उठ रही हैं। सोच रहे हैं – यही तो अनिश्चित जीवन है! धूप में, वर्षा में इधर-उधर भटकना, कहीं भी भोजन की निश्चितता नहीं! शरीर धारण करना कठिन है। इस पूजाघर में देवमूर्तियों पर गहना है, उन्हें बेचकर मैं अनायास ही सुखपूर्वक रह सकूँगा। फिर वे सोच रहे हैं – छि:! छि:! मैं तो ब्रह्मचारी हूँ। फिर विपरीत चिन्तन होने लगा – यह गहना तो ब्राह्मण के भी किसी काम नहीं आ रहा है और देवमूर्तियों का गहने से क्या काम? इसी तरह की अनेक बातें सोच-विचार कर अन्त में वे चुपके से गहना चोरी करके भाग गए। सुबह हुई, वे ब्रह्मचारी स्नानादि करके, गहने का थैला रखकर, पूर्व अभ्यासवश ज्योंही जप करने बैठे, त्योंही वे स्वयं की करतूत देखकर चौंक उठे। हाय! हाय! वे क्या काम कर बैठे! इतने दिन का ब्रह्मचारी-जीवन मिट्टी हो गया! मानसिक दुख, क्षोभ और पीड़ा से जर्जरित होकर वे अब क्या करें, कुछ सोच नहीं पा रहे थे। वे सोच रहे थे कि आत्महत्या कर लूँ, किन्तु वैसा करने पर तो गहना चोरी करने का पाप उनके साथ ही जाएगा। तब उन्होंने निश्चय किया कि सारे गहने उसी ब्राह्मण को लौटा दूँगा। वे दौड़ते हुए ब्राह्मण के पास गए और रोते-गिड़गिड़ाते हुए, सब दोष स्वीकार करके अपने पाप का दण्ड माँगने लगे । ब्रह्मचारी के लिए पश्चात्ताप ही पर्याप्त दण्ड है, ऐसा सोचकर ब्राह्मण ने उनसे कहा, 'मैं सहर्ष तुम्हें छोड़ देता हूँ। तुम निश्चिन्त होकर चले जाओ।' बाद में पूछने पर ब्रह्मचारी को पता चला कि कल उन्हें खाने को जो भात दिया गया था, वह एक चोर यजमान के श्राद्ध का चावल था। तब ब्रह्मचारी को सब कुछ स्पष्ट हो गया।

३०-०५-१९६१

प्रश्न – ज्ञानानन्द अवधूत - नित्यगोपाल का प्रसंग बड़ा ही रहस्यमय है। ठाकुर ने उनकी इतनी प्रशंसा की है!

महाराज – कैसे क्या होता है, बाहर से समझ में नहीं आता। ठीक-ठीक वैज्ञानिक ढंग से उन्नति नहीं करने से पतन होना बहुत ही स्वाभाविक है। किसी महापुरुष की कृपा से समाधि तक हो सकती है, किन्तु देह और देही (आत्मा) का पृथक बोध न होने तक भय का कारण बना रहता है। एकबार समाधिस्थ हो चुके मन को भी सजग रखना पड़ता है, ऐसा नहीं होने पर खराब परिवेश में धीरे-धीरे पतन

होता रहता है। किन्तु यह बात सही है कि मृत्यु के समय समाधि की स्मृति मुक्ति में सहायक होती है ।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।।

इसकी ऐसी तीव्र अनुभूति पुनः मन में उदित होकर साधक को मुक्त करती है। किन्तु भक्ति के पथ पर रंचमात्र गड़बड़ी होने पर काम नहीं चलेगा। तन-मन ठीक-ठीक पवित्र नहीं होने पर शुद्धाभक्ति नहीं होती, जो शुद्धाभक्ति नारद की, प्रह्लाद की, हनुमान की थी।

०८-०६-१९६१

प्रश्न – रामकृष्ण लोक क्या है महाराज?

महाराज – कई लोग हमारे रामकृष्ण लोक को स्वर्ग जैसा मानते हैं। किन्तु यह प्रकृति के अधिकार-क्षेत्र से बाहर है, यह मुक्तिक्षेत्र है।

अवतार भक्तों के लिए अवतीर्ण होते हैं। किन्तु एक ही साथ समग्र पृथ्वी का विकास नहीं होता है, क्योंकि वहाँ समष्टि मन होता है। यह अवतरण का बाई-प्रोडक्ट, उप-उत्पाद है। अभ्युदय – विकास देख रहे हो न – अफ्रीका तक जाग रहा है। गाँवों में तो देख रहे हो, दस वर्षों में कैसा आकाश-पाताल का परिवर्तन हो गया है!

११-०६-१९६१

प्रश्न – ठाकुर के भावमुख में रहने का क्या अर्थ है?

महाराज – निर्गुण अवस्था भगवान की स्वरूप-अवस्था है – भाव-अभाव से परे है, अस्ति-नास्ति से अतीत है। इसीलिए अभाव की अवस्था से कुछ नीचे भावमुख में रहना, यह आनन्दमय कोश में अवस्थान है। ठाकुर ने अचिन्त्य भेदाभेद अवस्था में रहकर लीला, कृपा आदि की है।

स्वामीजी का भी वैसा ही है – किन्तु स्वामीजी हमारे जैसे मायाधीन नहीं है, वे मायाधीश हैं। स्वामीजी ने तो निर्गुण में रहने के लिए प्राणपण प्रयत्न किया है। इसीलिए तो वे पवहारी बाबा के पास पूरे इक्कीस दिनों तक आते-जाते रहे। अन्त में उन्होंने देखा कि पवहारी बाबा ही स्वामीजी से सीखना चाहते हैं। ठाकुर तो सर्वव्यापी हैं –

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिंद प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। गीता, ७.७

किन्तु इस अवस्था में अधिक समय तक रहने पर कर्म नहीं होता। ठाकुर के 'आगमन' की बात भूल गए, वे एक माईक तैयार करके ऊपर के घर का संदेश दे गए। ठीक उपमा है, जैसे छत का जल बाघ के मुखौटे से गिरता है।

'मत्तः परतरं' अवस्था में कर्म न होने के कारण ही ठाकुर द्वैत अवस्था में रहते थे। चैतन्यदेव भी द्वैत अवस्था में रहते थे। क्या अद्‌भुत लीला की उन्होंने! ऐसा कोई बंगाली नहीं होगा, जो कृष्ण नाम में, उनके रूप में, लीला में अश्रुपात न करता हो। चैतन्यदेव के काल में मुसलमानों के द्वैतवाद से देश भरा हुआ था। उनके धर्म का उदारवाद और हमारे धर्म का दुराग्रह दोनों मिलकर ब्राह्मण और संन्यासी के अलावा हिन्दू धर्म के अनुयायियों में एक व्यापक आंदोलन आरम्भ किया। इसीलिए चैतन्यदेव मुसलमान धर्म की चुनौती का सामना करने हेतु भक्ति आन्दोलन लेकर आए। वैष्णवों की कोई जाति नहीं होती।

किन्तु मुर्शिदाबाद के मुसलमान आधा हिन्दू हैं। एक व्यक्ति बाबा (स्वामी अखण्डानन्द जी को सारगाछी में सभी बाबा कहते थे) के पास आया था। उसे टी.बी की बीमारी हो गयी थी। उसने कहा कि बाबा का प्रसाद खाने से ही वह ठीक हो जाएगा।

बाबा ने एक बताशा में से थोड़ा-सा खाकर उसे खाने को दिया, वह उसी से नीरोग हो गया था। मेरे पास भी आया था। मैंने उससे कहा था, अपना परिचय मत बताना। तीन दिन रहकर चले जाओ। आसपास के लोग जानने पर झगड़ा करेंगे।

इस मुसलमान धर्म को छोड़कर अरबवासियों के बचने का कोई रास्ता नहीं था। किन्तु यदि मेरी आलमारी की दवा कोई दूसरा खाए, तो वह स्वस्थ न होकर बीमार होगा । अरब का धर्म जबरदस्ती बंगाल में चलाने पर उससे सुविधा न होकर, असुविधा ही तो होती है। इसे बंगाल के अनुकूल बनाकर चलाना होगा। **(क्रमशः)**

पृष्ठ १३ का शेष भाग

यह विचार करना कि श्रीठाकुर तुम्हारे सामने आकर बैठे हैं। उस समय मन-ही-मन ठाकुर को पाद्य, अर्घ्य इत्यादि अर्पण कर पूजा करना। मानसपूजा करते समय यह चिन्तन करना कि श्रीठाकुर को जो विभिन्न फलमिष्टान्न इत्यादि अर्पण किए हैं, वे उन्हें ग्रहण कर रहे हैं। मन-ही-मन भोग इत्यादि निवेदन करना अच्छा है, क्योंकि इसमें तुम्हें किसी पर निर्भर नहीं होना पड़ेगा। फिर भी यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो सुबह अथवा शाम को जप-ध्यान के समय ठाकुर को फल-मिष्ठान्न आदि निवेदन कर सकते हो। **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द
जन्म जयन्ती विशेष

स्वामी विवेकानन्द और टिकट-परीक्षक

जब हम किसी ऊँचे पद वाले बड़े व्यक्ति से मिलते हैं, तो अपने-आप को छोटा समझते हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी हम अपने स्वाभिमान और आत्म-सम्मान को भी दाव पर लगा देते हैं। स्कूल-कॉलेज में कोई हमसे अधिक बुद्धिमान अथवा प्रतिभासम्पन्न छात्र होता है, तो उसके सामने हम स्वयं को छोटा समझते हैं, अपने आत्म-सम्मान की रक्षा नहीं कर पाते। अपने से बड़े लोगों से हम कुछ सीखें अवश्य, किन्तु अपने आत्म-सम्मान को भी बनाए रखें।

स्वामी विवेकानन्द का जीवन काल ३९ वर्ष, पाँच महीने और बाईस दिन था। तब हम अंग्रेजों के पराधीन थे। हजारों वर्षों की पराधीनता से अधिकांश लोग अपने देश और संस्कृति की गरिमा भूल चुके थे और विदेशियों की नकल करते थे। उनके सामने स्वयं को छोटा समझते थे। किन्तु स्वामीजी को अपने देश और देशवासियों के प्रति गर्व था। उन्हें स्वयं पर तो प्रचण्ड आत्मविश्वास था ही, इसके साथ-साथ वे दूसरों का भी सम्मान करते थे।

एकबार स्वामीजी आबू स्टेशन से जा रहे थे। तब वे स्वामी विवेकानन्द के रूप में पूरे विश्व में प्रसिद्ध नहीं हुए थे। यह घटना उनके अमेरिका जाने के पहले की है। स्वामीजी के साथ गाड़ी में उनके एक परिचित सज्जन उनसे बात कर रहे थे। तभी एक अँग्रेज टिकट परीक्षक आया, जिसे हम टी.टी.ई. कहते हैं। उन्होंने स्वामीजी के परिचित व्यक्ति को ऊँची आवाज में ट्रेन से उतरने के लिए कहा। किन्तु वे व्यक्ति भी रेल के कर्मचारी थे। इसलिए उन्होंने टिकट-परीक्षक की बातों का ध्यान नहीं दिया। वे अंग्रेज साहब से विवाद करने लगे। उन दोनों की बहस शुरू हो गई। स्वामीजी बीच में उनका विवाद सुलझाने का प्रयत्न करने लगे। इतने में वह अंग्रेज चिढ़ गया और उसने स्वामीजी को बड़े कड़े शब्दों में कहा, ''तुम काहे बात करते हो?'' उन अंग्रेज को लगा कि ये कोई साधारण से घुमक्कड़ साधु हैं, थोड़ा डाँटने से चुप हो जाएँगे। इसलिए उन्होंने अपनी टूटी-फूटी हिन्दी भाषा में स्वामीजी को डाँटना शुरू किया।

किन्तु स्वामीजी उस अँग्रेज पर अँग्रेजी में ही गरज उठे। स्वामीजी ने उससे कहा, ''आप तुम किसे कहते हैं? उच्च श्रेणी के यात्री के साथ कैसी बात करनी चाहिए, क्या यह आप नहीं जानते हैं?'' बेचारा टिकट-परीक्षक निरुत्तर हो गया। वह कहने लगा, ''गलती हुई है, मैं वह (हिन्दी) भाषा अच्छी तरह नहीं जानता, मैंने केवल इस आदमी (फेलो) को...।'' स्वामीजी से अब सहन नहीं हुआ। उसको पूरी बात न करते देकर स्वामीजी ने उन्हें डाँटते हुए कहा, ''आपने यह कहा कि आप हिन्दी भाषा नहीं जानते हैं, अब लग रहा है कि आप अपनी भाषा भी ठीक नहीं जानते। यह 'आदमी', यह कैसे कहा आपने, 'सज्जन' नहीं कह सकते? अपना नाम और नम्बर बताइए, आपकी उच्च पदाधिकारी से शिकायत करूँगा।''

स्वामीजी उस अँग्रेज टिकट-परीक्षक को डाँट रहे थे। चारों तरफ भीड़ इकट्ठा हो गई। वह अँग्रेज भी वहाँ से भागने का रास्ता खोज रहा था। स्वामीजी ने उससे कहा, ''अन्तिम बार कह रहा हूँ, या तो अपना नम्बर दीजिए, नहीं तो लोग देखेंगे कि आपके समान कापुरुष दुनिया में नहीं है।'' बेचारा वह अँग्रेज गर्दन झुकाए बिना बोले खड़ा रहा और कुछ ही देर में ट्रेन से उतरकर चला गया। उस गोरे साहब के चले जाने पर स्वामीजी ने अपने साथ आए हुए एक अन्य परिचित व्यक्ति से कहा, ''यूरोपियनों के साथ व्यवहार करते समय हम लोगों को क्या करना चाहिए, देखते हो? इसी आत्म-सम्मान का ज्ञान रखना। हम कौन हैं, किस मर्यादा के लोग हैं, इसे बिना समझकर आचरण करने पर लोग हमारी गर्दन पर चढ़ जाते हैं। दूसरों के सामने अपनी मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए। ऐसा नहीं होने पर वे लोग हमारी अवज्ञा और अपमान करते हैं और इससे दुर्नीति उत्पन्न होती है। शिक्षा और सभ्यता में हिन्दू संसार की किसी जाति से कम नहीं हैं, परन्तु वे अपने को हीन मानते हैं और इसीसे एक साधारण विदेशी भी हम लोगों को डंडे-चाँटे देते हैं और हम लोग चुपचाप उसे सह लेते हैं।'' ○○○

ईशावास्योपनिषद (१३)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

विद्या और अविद्या का क्या फल होता है, इसके सम्बन्ध में गुरु शिष्य से अगले श्लोक में कहते हैं –

अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यदाहुरविद्यया।

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।। १०।।

गुरु शिष्य से कहते हैं कि विद्या का फल अलग और अविद्या का फल अलग बताया गया है, यह बात हमने उन धीर पुरुषों से सुनी है, जिन्होंने हमारे प्रति उपदेश किया।

यहाँ मालूम पड़ता है कि गुरु और शिष्य में वार्तालाप हो रहा है। नहीं तो जब पहले मंत्र से शुरू किया, तो पता नहीं चल रहा था कि किसके प्रति कहा गया है। यहाँ अब दसवें मन्त्र में आकर पता चला कि गुरुजी शिष्य को बता रहे हैं कि देखो भाई ! मैं जो तुमको बता रहा हूँ, यह मेरी अपनी बात नहीं है। मैंने अपने गुरुजनों से, महापुरुषों से यही सुना है और जो सुना है, वही तुमको मैं बता रहा हूँ। यहाँ पर गुरु और शिष्य दोनों की उपस्थिति का भान होता है।

अब विद्या और अविद्या के फल को कहते हैं –

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।११।।

जो विद्या और अविद्या दोनों को एक साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पार कर विद्या से अमरत्व को पार कर लेता है।

जो विद्या और अविद्या को एक साथ जानता है, माने विद्या और अविद्या, इन दोनों को आत्मतत्त्व के साथ जानता है। उसके लिए क्या होता है? अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा – वह अविद्या के द्वारा मृत्यु को पार करता है और विद्यया अमृतं अश्नुते – विद्या के द्वारा अमृतत्व की उपलब्धि करता है। यह इसका शब्दार्थ हुआ।

नौवें मन्त्र में कहा गया कि जो अविद्या की उपासना करते हैं, वे गहरे अन्धकार में जाते हैं और जो विद्या में रत हैं, वे मानों और भी अधिक गहरे अंधकार में जाते हैं। दसवें मन्त्र में 'विद्या और अविद्या का फल अलग-अलग कहा गया है, ऐसा हमने उन धीर पुरुषों से सुना है, जिन्होंने हमारे प्रति आत्मतत्त्व का उपदेश किया।' ग्यारहवें मन्त्र में कहते हैं कि जो उस आत्मतत्त्व को विद्या और अविद्या इन दोनों के साथ जानता है, वह अविद्या के द्वारा मृत्यु को पार करता है और विद्या के सहारे उस अमृतत्व की उपलब्धि करता है। यह तीनों मंत्रों का शब्दार्थ है। अब हम इसके निहितार्थ को समझने की चेष्टा करें। अविद्या यानी कर्म। विद्या माने कोरा ज्ञान, कोरा सिद्धान्त जो जीवन में उतरा हुआ नहीं है। उसे हम केवल पांडित्य के लिए जो पढ़ते हैं। अविद्या में कर्म के भीतर में क्षमता है। क्या क्षमता है? कर्म बन्धन को काटने की क्षमता है। यह क्षमता कर्म में कब आती है? जब कर्म आत्मा के साथ संयुक्त होता है, तो कर्म करते हुए हम कर्म-बन्धन को काट सकते हैं। यदि कर्म के साथ आत्मा संयुक्त न हो, कर्म के साथ यदि ईश्वर संयुक्त न हो, तो उस कर्म से फिर कर्म-बन्धन कटता नहीं है, कर्म बन्धन और भी हम पर लगता जाता है, परन्तु कर्म में कर्म-बन्धन को काटने की क्षमता है। उसी प्रकार यह जो विद्या है, उस विद्या के भीतर अमरत्व देने की क्षमता है। विद्या में अमरत्व है, उससे मनुष्य अमर हो जाता है, यानि वह मृत्यु को जीत लेता है। कैसे जीत लेता है? आपको दो उदाहरण देता हूँ।

आप एक महाभारत के परीक्षित को देखिए और दूसरे भागवत के परीक्षित को देखिए । महाभारत के जो परीक्षित हैं, वे शापग्रस्त हैं और उनसे कहा गया है कि तुम सातवें दिन साँप के काटने से मरोगे। तब महाभारत के परीक्षित क्या करते हैं? अपने भवन को बहुत ऊँचा बनाते हैं और सब ओर से इस प्रकार की व्यवस्था करते हैं कि एक कीड़ा भी उनके भवन में कहीं से घुस न पाये। परन्तु क्या साँप घुसा नहीं? वह साँप घुसता है और सातवें दिन साँप के डँसने के कारण वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं। भागवत के परीक्षित क्या करते हैं? भागवत के परीक्षित भी साँप द्वारा डँसे जाने के कारण सातवें दिन मृत्यु को प्राप्त होते हैं, पर महाभारत के परीक्षित ने अपने को बचाने की बहुत चेष्टा की, एक कीड़ा भी न घुसे, ऐसी व्यवस्था उन्होंने अपने भवन में की और भागवत के परीक्षित खुले में बैठे हैं, भगवन्नाम सुन रहे हैं। शुकदेवजी

भागवत सुना रहे हैं और भागवत सुनने के फलस्वरूप उनके जीवन में जो ज्ञान आया, उन्होंने मृत्यु को जीत लिया। मौत तो होती ही है, शरीर तो मरता ही है, पर वे उस भागवत के ज्ञान के बल पर मृत्युभय को जीत लेते हैं। सातवें दिन साँप आकर डँस लेता है, पर परीक्षित को भय नहीं सताता है। महाभारत के परीक्षित भय के द्वारा सताये जा रहे हैं, पर भागवत के परीक्षित भय के द्वारा सताये नहीं जाते, उन्होंने मृत्युभय को जीत लिया, माने उन्होंने अमरता प्राप्त कर ली। ज्ञान के भीतर में, विद्या के भीतर में अमरता देने की क्षमता है। परन्तु वह क्षमता कब प्रगट होती है? जब वह विद्या आत्मतत्त्व के साथ जुड़ी हो तब। यदि विद्या से आत्मतत्त्व को निकाल दें, तो फिर विद्या क्या है? कहते हैं –

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यान-कौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद् भुक्तये न तु मुक्तये।।

अगर आत्मतत्त्व विद्या में न हो, तो विद्या भोग की चीज हो गयी। यदि विद्या का लक्ष्य ईश्वर न हो, तब तो यह विद्या बाँधनेवाली विद्या ही है, संसार-अन्धकार में ले जानेवाली विद्या ही है। यह केवल भोग की ही विद्या है। जैसे अपनी रसना तृप्ति के लिए रसगुल्ले का भोग करते हैं, वैसे ही हम नाम-यश की स्पृहा की तृप्ति के लिए विद्या का उपभोग करते हैं। अविद्या यानि कर्म में कर्म बन्धन को काटने की क्षमता है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से गीता में यही कहते हैं – अरे कर्म के द्वारा ही, तुम अपने बन्धन को काटने में समर्थ होगे –

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दन्ति तच्छृणु।।
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

१८/४५,४६

– अर्जुन ! अपने-अपने कर्म में लगे रहकर मनुष्य संसिद्धि को पा लेता है, कर्म बन्धन को काट लेता है। कैसे कर्म बन्धन में लगे रहकर के कर्म बन्धन को काट लेता है? यह उपाय तू मुझसे सुन। जहाँ से सारा संसार निकला है, विश्व निकला है और जिस विश्व में आकर ईश्वर समाहित हो गया है, उस ईश्वर की पूजा-आराधना, अभ्यर्चना करते हुए मनुष्य सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

कैसे अभ्यर्चना करें? उन्होंने कहा - स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य – अपने कर्मों के द्वारा उस तत्त्व की पूजा करें। मानों कर्म ईश्वर के साथ युक्त होकर के रह सकता है। इस प्रकार अविद्या, कर्म के भीतर में कर्मबन्धन को काटने की क्षमता है, किन्तु कब? जब हम कर्म को आत्मा से जोड़ें, तब।

जब कर्म के साथ हम आत्मतत्त्व का योग करते हैं, कर्म के साथ ईश्वर का योग करते हैं, तो वह कर्म कर्मयोग बन जाता है। जो अविद्या ईश्वर के साथ जुड़ जाती है, वह हमें मृत्यु से पार करा देती है। उसमें क्षमता है मृत्यु से पार कराने की और विद्या में क्षमता है हमें अमरता प्रदान करने की। विद्या के ईश्वर से जुड़ने पर उसकी अमरत्व क्षमता प्रकट हो जाती है। मृत्यु से पार करना जैसे नदी पार करना नहीं है कि हम नदी के उस पार चले गये, मानों अमरत्व को पार हो गये। यह आनन्द की वह स्थिति है, जिसमें किसी प्रकार का क्षरण नहीं है, वह ब्रह्मानन्द की स्थिति है। वही अमरता है, जहाँ पर हमें किसी प्रकार का भय नहीं सताता है। ये दोनों स्थितियाँ थोड़ी बारीकी से सोचकर के अलग-अलग करके देखिए। ये दो स्थितियाँ हैं।

दूसरा उदाहरण श्रीरामकृष्ण देव का है। एक मांझी एक पंडितजी को नदी पार करा रहा है। पंडितजी अकेले बैठे हैं। अब जो विद्या चंचु वाले होते हैं, वे कहीं-न-कहीं बुद्धि का विलास चाहते हैं। इतनी देर तक नदी पार करेंगे, समय लगेगा, तो उन्होंने बोलना शुरू किया। अच्छा, बोलो जी मांझी, तुमने कुछ अलंकार शास्त्र पढ़ा है क्या? अरे कहाँ महाराज ! हमको क्या मालूम अलंकार शास्त्र क्या है? अरे तब तो तुम्हारा एक चौथाई जीवन बेकार चला गया ! मांझी तो नदी पार करना चाहता है, वह अपना पतवार चला रहा है। थोड़ी देर बाद पंडितजी ने फिर पूछा - अच्छा ठीक है, तुमने अलंकार शास्त्र नहीं पढ़ा, किन्तु कम-से-कम तुमने साहित्य तो पढ़ा है न? साहित्य ! ये साहित्य क्या बला है महाराज? मैं जब से जन्मा हूँ, तबसे इस नाव-पतवार को लेकर ही रहता हूँ। अरे ! तब तो तुम्हारी दो चौथाई जिन्दगी बेकार चली गयी। आधा जीवन तो यूँ ही बेकार चला गया। पंडितजी अब कितनी देर तक चुप बैठे रहें, उन्होंने फिर पूछा – अच्छा, ठीक है, तुमने ये सब नहीं पढ़ा ! इतिहास तो तुमने पढ़ा ही होगा। इतिहास किस पक्षी का नाम है महाराज? मुझे तो कुछ मालूम नहीं। अरे ! अब तो तुम्हारी तीन चौथाई जिन्दगी बेकार चली गयी। इतने में काली-काली घटाएँ आयीं, जोरों से हवा चलने लगी। नाव डगमगाने लगी। मांझी ने पूछा – अच्छा पंडितजी तैरना जानते हैं क्या? पंडित जी बोले - नहीं। मांझी ने कहा – तब तो आपकी पूरी जिन्दगी बेकार चली गयी। उसके बाद वह नदी में कूदकर तैरने लगा। श्रीरामकृष्ण कहते हैं – बाबा ! पूरी जिन्दगी बेकार मत करो। **(क्रमशः)**

आध्यात्मिक जिज्ञासा (३७)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज ! कुछ दिन बाद ही तो हमलोगों की ब्रह्मचर्य-दीक्षा होने वाली है, इस सम्बन्ध में हमलोगों का कुछ मार्गदर्शन कीजिए।

महाराज – तुम लोगों को यह याद रखना होगा कि तुमलोग एक महत्त्वपूर्ण व्रत या संकल्प लेने जा रहे हो। इन व्रतों का पालन बहुत सरल नहीं है। मन में व्रत की महत्ता के प्रति सजग रहने पर ही ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करना सार्थक होगा। नहीं तो, नियमानुसार ब्रह्मचर्य दीक्षा होगी, किन्तु किन्तु उसमें प्राणशक्ति नहीं रहेगी। श्रीश्रीठाकुर से प्रार्थना करना जिससे वे इन व्रतों के पालन में सहायता करें। सर्वदा उनके शरणागत होकर, उन पर आश्रित होकर, इस भावना से प्रार्थना करना – हे प्रभु ! आप हमारी सहायता कीजिए। आप हमसे इन व्रतों का पालन करा लीजिए।

प्रश्न – महाराज, अभी इलाहाबाद में पूर्ण कुंभ चल रहा है। क्या आप कुंभ और तीर्थ आदि में दर्शन के लिये जाते थे?

महाराज – नहीं, मैं तीर्थ आदि में दर्शनार्थ नहीं जाता था। एक बार जब मैं तपस्या करके वापस आ रहा था, तब कुम्भ में गया था। कुम्भ देखने के उद्देश्य से नहीं गया था। यही केवल एक बार गया था। तीर्थों में जाने की इच्छा नहीं होती थी, किन्तु तपस्या करने गया हूँ। एक स्थान पर ही रहता था। हमारी कहीं जाने की इच्छा नहीं होती थी, रुपये की व्यवस्था भी नहीं करनी पड़ती थी। हम लोग काशी पाँच रुपये में और हरिद्वार नौ रुपये के ट्रेन-टिकेट में गये हैं। इन रुपयों की व्यवस्था करना भी बहुत कठिन था। एक बार मई के महीने में स्टडी-सर्किल से मद्रास होकर वापस बेलूड़ मठ आ रहा था। मेरे साथ जो साधु थे, उनकी दक्षिण भारत के तीर्थ आदि को देखने की बड़ी इच्छा थी। वे मुझे भी साथ में लेना चाहते थे। उनके बहुत आग्रह करने पर मैंने बताया कि मेरे पास रुपये नहीं हैं। यह सुनकर मद्रास मठ के कैशियर महाराज स्वामी सिद्धेश्वरानन्दजी ने कहा – "तुम जाओ, मैं ऑफिस से रुपये देता हूँ।" मैंने कहा, "मैंने मद्रास मठ में कभी सेवा नहीं की। भविष्य में कभी यहाँ सेवा करूँगा, ऐसा नहीं लगता। इसलिये यहाँ से रुपये लेना ठीक नहीं होगा।" तब सिद्धेश्वरानन्द जी ने कहा – "मैं अपने व्यक्तिगत रुपये दे रहा हूँ, तुम जाओ।" इस प्रकार जोड़-गाँठकर अन्त में सहमत होना पड़ा। आसपास के एक-दो तीर्थों का दर्शन करने के बाद बहुत बुखार हो गया। मैंने संगी साधु से कहा – "अस्वस्थ शरीर से तुम्हारे साथ भ्रमण कर तुम्हें परेशान नहीं करूँगा। मैं मद्रास जा रहा हूँ।" मद्रास आकर बचे रुपये वापस दे दिये। उसके बाद बेलूड़ मठ आ गया।

प्रश्न – महाराज ! वैराग्य कैसे सुरक्षित रहता है या बढ़ाया जा सकता है?

महाराज – विचार के द्वारा।

– वैसा जीवन नहीं देखने से क्या ऐसा होता है?

महाराज – क्यों? क्या यह (हाथ से अपने सिर को दिखाते हुए) नहीं है? यदि विचार किया जाय कि क्यों आया हूँ, जीवन का उद्देश्य क्या है और यदि उसे प्राप्त करने की इच्छा हो, तो सब कुछ ठीक रहेगा।

प्रश्न – महाराज, हमलोगों को गायत्री मंत्र मिला है, उसका जप तो करते हैं, क्या उसका ध्यान भी करना होगा?

महाराज – गायत्री मंत्र का ध्यान होता है, किन्तु वह कठिन बात है। तुमलोगों को नहीं करना होगा। जैसे बताया है, १२ बार जप करना। कहते हैं कि गायत्री मंत्र का त्रिसन्ध्या (त्रिकाल) जप किया जाता है। प्रात:, दोपहर और शाम, यही त्रिकाल है। तुम लोगों का तो दोपहर में काम रहता है। हो सकता है, उस समय जप करने का समय न मिले। तुम लोग दो बार प्रात:काल और सन्ध्या ही जप करना। लेकिन समय मिलने पर दोपहर में भी कर सकते हो। सुबह-शाम जप करने के पहले गुरु के ध्यान के पहले १२ बार गायत्री-मंत्र का जप कर लेना। ध्यान रखना कि यन्त्रवत् जप न हो। जैसे प्रार्थना करते हैं, ठीक वैसे ही

सोचना और करना। 'सवितु:' का अर्थ परमेश्वर होता है। वे ब्रह्म हैं या अन्तर्यामी हैं, यह सोचने की कोई आवश्यकता नहीं है। परमेश्वर अर्थात् जिनसे यह सृष्टि हुई है, वे चाहे जैसे भी हों। यदि उनका चिन्तन करने में कठिनाई हो, तो ठाकुर का ही चिन्तन करना।

– महाराज, १२ बार तो सबसे कम है। यदि इससे अधिक करने की इच्छा हो, तो क्या कर सकते हैं?

महाराज – १२ बार ही करो। प्रत्येक बार जप-ध्यान के पहले १२ बार जप करो। यही सबसे कम और यही सर्वाधिक है। यदि अधिक जप करना चाहते हो, तो इष्ट-मंत्र का अधिक जप करो। मैं गायत्री-मंत्र के जप के लिये अधिक जोर नहीं देता। इष्ट-मंत्र के जप के लिए ही अधिक जोर दिया जाता है।

– महाराज, क्या संन्यास के बाद भी गायत्री-मंत्र का जप किया जाता है?

महाराज – ऐसा प्रश्न मैंने अपनी दीक्षा के बाद पूज्य शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द जी) को पूछा था। दीक्षा से पहले ही हमारा उपनयन हुआ था। मैं गायत्री-मंत्र का जप करता था। मैंने पूछा, ''अब तो इष्ट-मंत्र मिल गया है, क्या अब भी गायत्री-मंत्र का जप करना होगा?'' महाराज ने कहा – ''क्या तुम्हें गायत्री-दर्शन हो गया है?'' मैंने कहा – नहीं। ''तब क्या? गायत्री-मन्त्र जपते रहना।''

प्रश्न – महाराज, यज्ञोपवीत-धारण के सम्बन्ध में कुछ विधि-निषेध के बारे में कहिए।

महाराज – उपवीत अर्थात् यज्ञोपवीत। यज्ञोपवीत धारण करने का अर्थ है – यज्ञ में अधिकार प्राप्त करना। बहुत सावधानी और श्रद्धा के साथ यज्ञोपवीत का उपयोग करना। शौचादि के समय दाहिने कान में लपेट कर रखना, देखना नाभि के नीचे न जाय। दाहिना कान तीर्थ के समान होता है। कई लोग गले में लपेट कर रखते हैं, वैसा भी कर सकते हो। किन्तु यज्ञोपवीत मत निकालना या कमर में मत लपेटना। उसे स्वच्छ रखना। साबुन से साफ करना। धोने के समय शरीर पर या अंगुल के अग्रभाग पर रखकर धोना। उसे शरीर से बिल्कुल निकालकर मत धोना। जब यज्ञोपवीत टूट जाय, तो उसे निकालकर दूसरा पहन लेना। उसका परित्याग करने से शरीर के नीचे से निकालना, सम्भव हो, तो उसे गंगाजी में विसर्जित कर देना। परित्याग के पहले एक दूसरे यज्ञोपवीत की गाँठ बाँधकर तैयार कर रख लेना। गाँठ बाँधने के कई नियम हैं। यज्ञोपवीत का बहुत सावधानी से उपयोग करना। यथायोग्य श्रद्धा के साथ इसे धारण करते नहीं देखकर बीच में मठ के संचालकों ने यज्ञोपवीत देना ही बन्द कर दिया था। उसके बाद अब पुन: देना प्रारम्भ हुआ है।

प्रश्न – महाराज, गीता के कर्मयोग और स्वामीजी के द्वारा प्रवर्तित कर्मयोग, दोनों में क्या अन्तर है?

महाराज – बहुत अन्तर है। गीता का कर्मयोग अर्थात् निष्काम कर्मयोग है। उसमें निषेधात्मक भाव है। स्वामीजी का कर्मयोग भी निष्काम कर्मयोग है, किन्तु केवल अनासक्त भाव से कर्म करना नहीं है, अनासक्त भाव से कर्म करने के साथ-साथ जीव या जगत की सेवा करना भी उद्देश्य है। केवल जीव नहीं, जीव की 'शिव-भाव' से सेवा करना है। यह स्वामीजी का सकारात्मक भाव है। क्या गीता में कहीं भी जीव की सेवा की बात है? यह सेवा समाज-सुधारकों की जगत की सेवा जैसी नहीं है। उनलोगों का भी नकारात्मक दृष्टिकोण है। संसार में इन सबमें अपूर्णता है, उसे दूर करना स्वामीजी का उद्देश्य था। स्वामीजी के कर्मयोग में सेवा की भावना नवीन है एवं जीव की शिवभाव सेवा करना, यह सकारात्मक दृष्टिकोण है। इसमें अनासक्ति की साधना भी हो रही है और जीव की सेवा भी हो रही है। **(क्रमश:)**

आलोकित हो तन-मन सारा

आनन्द तिवारी पौराणिक

दीप बनो बाँटो उजियारा। आलोकित हो तन-मन सारा।।
अन्धकार को कोसो मत, किस्मत का रोना छोड़ो,
नव संकल्प परिश्रम दृढ़ जीवन में जोड़ो।
बहुत अमूल्य समय है मित्रो, कीमत इसकी पहचानो,
कर्मवीर बनकर जीवन में प्रगति ध्येय को जानो।
प्रखर तेजस्वी सूरज होना, न बनना टिम टिम तारा,
आलोकित हो तन-मन सारा।।
मेमने बन मिमियाना छोड़ो, सिंह-सा करो दहाड़,
प्रस्तर से झर जाये निर्झर, राहें दे पहाड़।
आदर्श हमारे प्रताप, शिवा, वीर विवेकानन्द,
रामकृष्ण गौतम गाँधी सत् चित् परमानन्द।।
विश्वगुरु फिर बने ये धरती, स्वर्णिम भारत प्यारा।
आलोकित हो तन-मन सारा।।

ऐसी स्मार्ट सिटी जो अयोध्या जैसी हो

माननीय श्री कप्तान सिंह सोलंकी

राज्यपाल, त्रिपुरा

(प्रस्तुत व्याख्यान माननीय श्री कप्तान सिंह सोलंकी जी, राज्यपाल, त्रिपुरा ने ७ सितम्बर, २०१८ को रामकृष्ण मिशन आश्रम, चण्डीगढ़ के हीरक जयन्ती समारोह के उपलक्ष्य में दिया था। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु इसका सम्पादित अंश यहाँ दिया जा रहा है। – सं)

...गवर्नर किसी कार्यक्रम में जाता है, तो कार्यक्रम की शोभा बढ़ती है। लेकिन मैं यहाँ पर उलटा अनुभव कर रहा हूँ। आप-सबके बीच में आकर (स्वामी विवेकानन्द सेन्टर ऑफ एक्सीलेन्स फार यूथ का) लोकार्पण करते हुए मेरी शोभा बढ़ रही है। आप सबने मुझे याद किया और इतना अच्छा सुखद अवसर दिया, इसके लिये मैं आप सबका हृदय से धन्यवाद प्रगट करता हूँ, कृतज्ञता प्रगट करता है, अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

चंडीगढ़ वैसे भी सुन्दर है। लेकिन सुन्दरता अगर भौतिकता के कारण हो, धन-सम्पदा के कारण हो, तो वह सुन्दरता सुन्दर नहीं होती, शुद्ध नहीं होती। जब तक उसमें आध्यात्मिकता न हो, तब तक वह सुन्दरता उत्कृष्ट नहीं होती। चंडीगढ़ को सही अर्थों में सुन्दर बनाने में यह आश्रम बहुत बड़ा योगदान दे रहा है। मुझे जानकारी मिली कि इसकी स्थापना १९५६ में देश के आजाद होने के बाद हुई। पहले लाहौर और कराची में आश्रम थे। लेकिन देश आजाद होने के बाद वे आश्रम बंद हो गये। यह आश्रम १९५६ में अकेला था और १९५८ में वर्तमान स्थान पर स्थानान्तरित हुआ। तब से लेकर अब तक इसने अपेक्षा से अधिक, आशा से अधिक सफलता प्राप्त की। सफलता इस बात के लिये कि जनता में प्रेरणा जाग्रत करने के लिये ठाकुर श्रीरामकृष्ण परमहंस के द्वारा बताये हुए रास्तों, स्वामी विवेकानन्द के विचारों का प्रसार करने के लिये इस आश्रम ने बड़ी निष्ठा और साधना से बहुत अच्छा काम किया है।... रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक सूत्र बताया था कि अगर आप भारत को जानना चाहते हो, तो स्वामी विवेकानन्द को जानो। स्वामी विवेकान्द से अगर आप परिचति हो गये, उनके विचारों से, उनके कार्यों से परिचित हो गए, उनकी भविष्यवाणी से परिचित हो गये कि वे कैसा भारत बनाना चाहते थे, भारत ही नहीं शिकागो में जाकर कहा कि कैसा विश्व बनाना चाहते थे, तो आप भारतवर्ष और भारतवर्ष का उद्देश्य, भारतवर्ष विश्व में क्या भूमिका निभाना चाहता है, उसको आप जान सकते हैं। लेकिन इसका दूसरा अर्थ भी है कि अगर आप स्वामी विवेकानन्द को नहीं जानते, तो आप भारत को भी नहीं जानते।

भारतीय विचारधारा, भारत की संस्कृति, भारतीय चिन्तन के समान हैं स्वामी विवेकानन्द। हम कल्पना कर सकते हैं कि १८९३ में शिकागो में कितना बड़ा अनर्थ होने वाला था। शिकागो के विश्व-सर्वधर्म-सम्मेलन में सभी धर्म के अनुयाइयों को बुलाया गया था। इस सम्मेलन में ईसाई धर्मानुयायी क्या सिद्ध करना चाहते थे? वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि पूरे विश्व में जितने धर्म हैं, उनमें ईसाई धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। उनकी ऐसी धर्म की कल्पना है कि हमारा धर्म, हमारा पंथ, हमारी उपासना पद्धति सबसे बड़ी है, यह देश को, पूरे विश्व को जोड़ती नही है, यह मानवतावादी नही है, यह मानवता को खंडित करती है और मानवता का विनाश करती है।

स्वामी गौतमानन्द जी कहा कि रामकृष्ण देव ने तो सभी धर्मों की अनुभूति प्राप्त की थी और उससे उन्होंने सिद्ध किया कि हरेक धर्म का ईश्वर के साथ एकाकार होना ही उद्देश्य है। उनके इस सन्देश के बिलकुल विपरीत योजना १८९३ में शिकागो के सर्वधर्मसभा के आयोजन में बनायी गयी थी। स्वामी विवेकानन्द उस सम्मेलन में अधिकृत वक्ता नहीं थे, उनको भारत से बुलाया नहीं गया था।

भारतवर्ष से तो कोई दो महानुभाव गये थे । कोई एक मजुमदार और (वीरचन्द) गाँधी थे। ये (स्वामीजी) तो अनिमन्त्रित वक्ता थे। ये दक्षिण में प्रवास पर थे। ये कन्याकुमारी में समुद्र में २०० मीटर अंदर जाकर शिला पर बैठे ध्यानमग्न थे। उस समय उनको भारत माँ का, ठाकुर रामकृष्ण परमहंस का संदेश मिला कि शिकागो जाओ और पूरी दुनिया जो अनर्थ के गड्ढे में ढकेली जा रही है, उससे उन्हें उबारो। ऐसा कहते हैं कि इन अनिमन्त्रित वक्ता के पास पर्याप्त कपड़े भी नहीं थे। ये रेलवे स्टेशन पर काठ का डिब्बा, काठ का जो बॉक्स होता है, जिसमें पार्सल भेजा जाता है, उसमें छिप करके उन्होंने रात गुजारी। भूखे-प्यासे थे, सड़क के किनारे बैठे हुए थे, तब एक महिला का ध्यान उनकी तरफ गया। उसने आकर के उनको पूछा – स्वामीजी कहाँ से आये हैं? स्वामीजी ने बताया। उस महिला ने उनको शरण दी। वे महिला इतनी प्रभावशाली थीं कि उन्होंने सर्वधर्म-सम्मेलन में पहुँचने में मदद की । कितना बड़ा काम किया उन्होंने। कहते

हैं कि सर्वधर्म-सभा को सभी वक्ता 'लेडिज एंड जेन्टलमेन' से सम्बोधित कर रहे थे। किन्तु जब स्वामी विवेकानन्द बोलने के लिये खड़े हुए, तो उन्होंने 'लेडिज एंड जेन्टलमेन' का उच्चारण नहीं किया। उन्होंने कहा – सिस्टर्स एंड ब्रदर्स ऑफ अमेरिका (अमेरिकावासी बहनो और भाइयो)। आप जरा किसी महिला को लेडी कहिये, तब देखिये, क्या भाव पैदा होता है और आप उसी को सिस्टर कहिए, तो देखिये क्या भाव पैदा होता है।

कहते हैं कि उनका बहनो और भाइयो का सम्बोधन इतना प्रभावित करनेवाला, इतना मोहक था कि बहुत देर तक श्रोता तालियाँ बजाते रहे। उन्होंने कहा था, मैं उस देश से आ रहा हूँ, जहाँ सभी धर्मों को स्वीकार करते हैं, सभी धर्मों का सम्मान करते हैं। सभी धर्मों के रास्ते अन्ततोगत्वा परमतत्त्व, सर्वशक्तिमान परमेश्वर तक पहुँचते हैं। किसी की प्रकृति अलग-अलग है, उसकी इच्छायें अलग-अलग हैं, उसके अनुसार वह जो चाहे उस धर्म को अपनाये, क्योंकि वह उन सभी रास्तों से परमात्मा में ही पँहुचता है। इसलिये हमारा देश ऐसा है, जो कहता है, तुम भी सही हो और हम भी सही हैं। आज विश्व को इसकी कितनी जरूरत है, जरा विचार करके देखिये। इसलिये विवेकानन्द केवल तभी नहीं, आज भी प्रासंगिक हैं, बल्कि आज ज्यादा प्रासंगिक हैं।

वहाँ स्वामी विवेकानन्द ने एक कुँए के मेढ़क की कहानी सुनाई थी, जिसने कभी समुद्र देखा ही नहीं था। एक समुद्र का मेंढ़क उछल कर जमीन पर आया और जमीन से वापस समुद्र में नहीं गया। जमीन में आगे बढ़ते-बढ़ते कुँए में जाकर गिर गया। समुद्र का मेंढ़क जब कुँए के मेंढक से मिला, तो उसने पूछा – तुम कहाँ से आये हो? समुद्र के मेंढ़क ने कहा, मैं समुद्र से आया हूँ। तुम्हारा समुद्र कितना लम्बा-चौड़ा है? अब बताईये समुद्र का मेंढक क्या उत्तर देगा कि हमारा समुद्र कितना लम्बा-चौड़ा है? कोई समुद्र की लम्बाई-चौड़ाई नाप सकता है क्या? पूरी पृथ्वी पर दो-तिहाई समुद्र है। जब उसने उत्तर नहीं दिया, तो कुँए के मेंढक को लगा कि यह समझ नहीं पा रहा है। तब कुएँ के मेंढक ने एक छलांग लगाकर कहा कि क्या इतना बड़ा है? उसने 'नहीं' कहा। फिर तीसरी छलांग लगाई। समुद्र के मेंढ़क ने गुस्से में आकर कहा, तू जिन्दगी भर इसी तरह छलांग लगाता रह, किन्तु मेरे जलाशय की लम्बाई-चौड़ाई नहीं नाप सकता। क्या समुद्र की तुलना कुँए से हो सकती है? स्वामीजी ने यही बात समझाई कि इसी तरह तुम सब कुँए के मेंढ़क हो, तुमको नहीं मालूम कि वेदान्त और हिन्दुत्व क्या होता है। हिन्दुत्व विशाल समुद्र है और ईसाई किंचित् प्रतिध्वनि मात्र है। इसे समझने का प्रयास करो। धर्म-निरपेक्ष शब्द उसमें से ही आया है। भारत तो वैसे भी धर्म-निरपेक्ष है।

स्वामी विवेकानन्द ने पूरे विश्व को यह संदेश दिया कि हम सभी धर्मों का आदर करते हैं। इसके सबसे बड़े प्रचारक हैं वे। आज अपने देश में इसकी कितनी आवश्यकता है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद विश्व शान्ति के लिये, भाइचारा और एकता के लिये लीग ऑफ नेशन बना। लेकिन यह सफल नहीं हो पाया। दूसरा विश्व युद्ध फिर हुआ। दूसरे विश्व युद्ध के बाद विश्व स्तर पर यूनाइडेट नेशन बना। लेकिन लीग ऑफ नेशन और यूनाईडेट नेशन दोनो वह काम नहीं कर पाये, जो स्वामी विवेकानन्द ने अपने भाषण के द्वारा कर दिखाया।

स्वामी विवेकानन्द की यह भविष्यवाणी है। उन्होंने पूरे विश्व के इतिहास का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला था कि १७वीं शताब्दी इग्लैंड की थी। इंग्लैंड के राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था। वे आधी से ज्यादा पृथ्वी पर थे। १८वीं शताब्दी फ्रांस की थी। १९वीं शताब्दी जर्मनी की थी और २०वीं शताब्दी अमेरिका की थी। स्वामी विवेकानन्द मोक्ष प्राप्त करने के बाद, यह कह कर गये थे – २१वीं शताब्दी भारत की होगी। महर्षि अरविन्द ने तो इससे आगे कहा – भारतवर्ष की इतने वर्ष की परतन्त्रता के पश्चात्, भारतवर्ष के उदय का संकेत उस वर्ष से मिलना शुरु हुआ, जब ठाकुर रामकृष्ण ने जन्म लिया। ठाकुर रामकृष्ण का जन्म १८३६ में हुआ।

१८३६ के बाद का घटना क्रम देखिए कि देश में कितने परिवर्तन शुरु हुए, कितने साधु संत हुए, जिन्होंने देश में परिवर्तन की वीणा बजाई। स्वामी विवेकानन्द भी उसी में से हैं। उन्होंने १८६३ में जन्म लिया और १८९३ में विश्व को संदेश दिया। महर्षि अरविन्द ने भी कहा कि १८३६ से भारत का उदय, भारत का पुनरुत्थान हुआ । १७५ वर्ष लगेंगे, तब इसके चिह्न साफ दिखाई देंगे। १८३६ में १७५ जोड़िये २०११ आता है। इस शताब्दी में हम जी रहे हैं और आज हम देख रहे हैं कि भारत का पूरे विश्व में डंका बज रहा है। जहाँ कहीं भी देखो, लोग भारत की तरफ देख रहे हैं। इस परिवर्तनकारी समय में स्वामी विवेकानन्द जो भविष्यवाणी करके गये थे, उसको सार्थक करने के लिये कितनी बड़ी आवश्यकता है। सबसे बड़ी आवश्यकता देश के नौजावानों की है। ३५ वर्ष से कम के नौजवान अपने देश में ६५

प्रतिशत हैं। पूरे विश्व में ऐसा कोई देश नहीं है, जहाँ इतने नौजवान हों। यह युवा देश है। इसलिए २१वीं शताब्दी में स्वामी विवेकानन्द की भविष्यवाणी को, उनके सपनों को पूरा करने के लिये, देश के युवाओं की आवश्यकता है। उनमें स्वामी विवेकानन्द के विचार और संस्कार देने की जरूरत है। इतना ही नहीं, स्वामी विवेकानन्द को मालूम था कि इन विचारों को आगे बढ़ाने के लिए किसी संस्था की जरूरत पड़ेगी, इसीलिए वे रामकृष्ण मिशन की स्थापना करके गये। यह रामकृष्ण मिशन पूरे देश में, पूरे विश्व में उस काम में लगा हुआ है।

अगर हम देश की प्रगति करना चाहते हैं, तो विचार कर काम करना होगा। क्या अच्छी सड़कें बन जायेंगी, तो देश की प्रगति हो जायेगी? क्या सारी सिटी स्मार्ट बन जाये, तो देश की प्रगति हो जायेगी? क्या कृषि का उत्पादन बढ़ जाये, उद्योग बढ़ जाये, सबको मकान मिल जाये, रोजगार मिल जाये, तो देश की प्रगति हो जायेगी? ये सब देश की प्रगति के लिए आवश्यक हैं, जीवन के भरण-पोषण के लिये, सांसारिक सुख के लिए आवश्यक हैं, लेकिन देश इससे उन्नत नहीं होगा। अगर आपको स्मार्ट सिटी भी बनानी है, तो मुझे स्मार्ट सिटी लंका जैसी नहीं चाहिए, जिसमें सोने के मकान और रावण थे। हमको स्मार्ट सिटी अयोध्या जैसी चाहिए, जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम थे। अगर सब कुछ उन्नत हो गया, लेकिन आदमी रावण बन गया, आदमी दुर्योधन बन गया, तो वह कैसी स्मार्ट सिटी होगी ! इसलिए स्मार्ट सिटी के साथ-साथ मुझे राम चाहिए, युधिष्ठिर चाहिए। यदि हमें ऐसा करना है, तो सबसे पहले ध्यान उन युवाओं पर देना पड़ेगा, जिनको समाज विश्वविद्यालय और सामाजिक संस्थानों के माध्यम से शिक्षा तथा संस्कार देता है। आदमी में बहुत सम्भावनायें हैं, बहुत ऊर्जा है। किन्तु उस ऊर्जा की अभिव्यक्ति बिना संस्कारों के नहीं हो सकती। बिना ज्ञान का परिचय कराये, बिना ज्ञान का मार्गदर्शन कराये नहीं हो सकती। मुझे लगता है कि इन युवाओं के लिये योग्य संस्कार देने की दृष्टि से जितने प्रयास होंगे, वे भारत की प्रगति के लिये बहुत बड़े निर्णायक सिद्ध होंगे।

इस बात को ध्यान में रखते हुए चंडीगढ़ के इस रामकृष्ण मिशन आश्रम ने बहुत सुन्दर काम किया है – 'स्वामी विवेकानन्द सेन्टर ऑफ एक्सीलेन्स फार यूथ'। अभी जो कुछ भी मैंने देखा, उसको देखकर के मुझे लगता है कि कोई भी नौजवान यहाँ आयेगा, कोई भी अन्य व्यक्ति आयेगा, तो जरूर इस बात से प्रभावित होगा कि उसके जीवन की दिशा उसके जीवन का रास्ता क्या होना चाहिए। इसलिए चंडीगढ़ के इस रामकृष्ण मिशन आश्रम को मैं धन्यवाद देता हूँ, साथ-साथ यह आशा करता हूँ कि आप जिस गति से युवाओं को संस्कार देने का काम करते रहे हैं, उसी तरह आगे करते रहेंगे। आप सब आयोजकों को, मैनेजिंग कमेटी को धन्यवाद देता हूँ कि सेन्टर आफ एक्सीलेन्स और सोविनियर के लोकार्पण के लिये आपने मुझे बुलाया। धन्यवाद ! ○○○

मिलते हैं भगवान

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

वह मानव है नाम का जो मानवता हीन।
मानवता बिन लोक सब रहे दुखी और दीन।।
प्रेम करे जो काम वह करे नहीं तलवार।
केवल पावन प्रेम का प्यासा सब संसार।।
इस सारे संसार का ईश्वर ही आधार।
मनसा वाचा कर्मणा करो उसी से प्यार।।
यदि चाहे हरि मिलन तो अन्तर के पट खोल।
बीत रहा क्यों व्यर्थ में यह जीवन अनमोल।।
इन्द्रियकुल को जीत जो करे चित्त एकत्र।
उसको हरिदर्शन मिले अत्र-तत्र-सर्वत्र।।
वही भक्ति है, ज्ञान है और वही है योग।
जिससे प्रभु का दरस हो और कटे भव-रोग।।
तन की निन्दा मत करो, तन है रतन समान।
इससे ही सब कर्म और मिलते हैं भगवान।।
सभी रसों में प्रेम रस सबमें सदा प्रधान।
मात्र प्रेम से ही सदा मिलते हैं भगवान।।
महा मोह मद मान में जो रहता है चूर।
उसके जीवन से कभी दुख न होते दूर।।
अमृत नहीं जग में कहीं कोई प्रेम समान।
विष समान लगते सभी प्रेम बिना पकवान।।
जो सत् की संगति करे, सो सच्चा सत्संग।
धन्य वही सत्संग, जो भरे भक्ति का रंग।।
मानवता में ही रमें नित्यमेव भगवान।
मानवता बिन है नहीं मानव का उत्थान।।

मुण्डक-उपनिषद् व्याख्या (७)

स्वामी विवेकानन्द

(१८९६ ई. के जनवरी में अमेरिका के न्यूयार्क नगर में स्वामीजी के 'ज्ञानयोग' विषयक व्याख्यानों की एक शृंखला का आयोजन किया गया था। २९ जनवरी को उन्होंने 'मुण्डक-उपनिषद्' पर चर्चा की थी। यह व्याख्यान उनके एक अंग्रेज शिष्य श्री जे. जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था। परवर्ती काल में इसे स्वामीजी की अंग्रेजी ग्रन्थावली के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। सैन फ्रांसिस्को की प्रव्राजिका गायत्रीप्राणा ने स्वामीजी के सम्पूर्ण वाङ्मय से इससे जुड़े हुए अन्य सन्दर्भों को इसके साथ संयोजित करके 'वेदान्त-केसरी' मासिक और बाद में कलकत्ते के 'अद्वैत-आश्रम' से ग्रन्थाकार में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने इसका अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करके इसे धारावाहिक रूप से प्रकाशन हेतु प्रस्तुत किया है – सं.)

तृतीय मुण्डक

प्रथम खण्ड

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति
अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।३.१.१।।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो-
ऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश-
मस्य महिमानमिति वीतशोकः।।३.१.२।।

सम्पूर्ण वेदान्त-दर्शन – इस एक दृष्टान्त में निबद्ध है – एक ही वृक्ष पर दो पक्षी हैं; एक ऊपरी और दूसरा निचली डाली पर। ऊपरवाला पक्षी शान्त, मौन, तेजस्वी और अपनी महिमा में विभोर है; और निचली डालों का पक्षी इधर-उधर फुदकता हुआ कभी मीठे, तो कभी कड़वे फल खा रहा है। इसके फलस्वरूप कभी वह सुखी होता है, तो कभी दुखी हो जाता है।

थोड़ी देर बाद निचले पक्षी ने एक अत्यन्त कड़वा फल खाया और वितृष्णा का अनुभव करते हुए उसने ऊपर की ओर उस दूसरे पक्षी की ओर देखा – सुनहले पंखोंवाला वह अद्भुत पक्षी, न मीठे फल खाता था और न कड़वे; वह न तो सुखी होता था और न दुखी; बल्कि वह शान्त भाव से अपनी आत्मा में ही विभोर था। निचली डाल का पक्षी भी उसी अवस्था को पाने के लिये व्याकुल हुआ और उसकी ओर थोड़ा-सा फुदका। परन्तु वह शीघ्र ही उस ऊपरवाले पक्षी जैसा होने की अपनी इच्छा को भूल गया और पुनः फलों को खाने में लग गया।

थोड़ी देर बाद, उसने फिर एक अत्यन्त कड़वा फल खाया, जिससे उसका मन बड़ा खट्टा हो गया। अब उसने पुनः उस ऊपर की ओर देखा और ऊपरवाले पक्षी की ओर बढ़ने का प्रयास किया। वह एक बार फिर भूल गया और थोड़ी देर बाद उसने फिर ऊपर की ओर देखा। इसी प्रकार वह बारम्बार फुदकता हुआ उस सुन्दर पक्षी के समीप जा पहुँचा। उसने देखा कि ऊपरी पक्षी के पंखों से एक ज्योति निकलकर उसके अपने शरीर को चारों ओर से आवृत कर रही है। उसे स्वयं में एक परिवर्तन का अनुभव होता है और लगता है कि वह मानो पिघलता जा रहा है। वह और भी निकट पहुँचता है; और देखता है कि उसके आसपास का सब कुछ पिघलता जा रहा है। आखिरकार वह इस अद्भुत परिवर्तन को समझ जाता है।

निचली डाल का पक्षी मानो ऊपरवाले पक्षी की एक घनीभूत छाया मात्र था – उच्चतर का प्रतिबिम्ब था। स्वरूपतः वह स्वयं सदैव ऊपरवाला पक्षी ही था। इस नीचेवाले छोटे-से पक्षी का मीठे और कड़वे फल खाना; और कभी रोना तथा कभी खुश होना – यह सब एक निरर्थक कल्पना, एक स्वप्न मात्र था; वास्तविक पक्षी सर्वदा ही – शान्त तथा मौन, महिमामय तथा तेजयुक्त, दुःख-शोकों से अतीत के रूप में ऊपर विद्यमान था।

ऊपरवाला पक्षी – परमात्मा अर्थात् जगत् का ईश्वर है; और नीचेवाला पक्षी – इस संसार के सुख-दुखरूपी मीठे-कड़वे फलों का भोक्ता अर्थात् जीवात्मा है।[१] जीवात्मा समझता है कि – मैं दुर्बल हूँ, मैं छोटा हूँ, मैं तुच्छ हूँ और हर तरह के झूठ बोलता रहता है। वह कहता है – मैं स्त्री हूँ या पुरुष हूँ या बालक हूँ। वह कहता है कि – 'मैं पुण्य करूँगा' या 'मैं पाप करूँगा'। इसी प्रकार वह सोचता रहता है कि वह स्वर्ग में जायेगा या फिर वह सैकड़ों तरह के कार्य करेगा। वह उन्माद की अवस्था में बातें तथा कार्य

१. वही, खण्ड ३, पृ. १५७-५८

करता रहता है; और इस उन्माद की मूल धारणा यह है कि वह स्वयं को दुर्बल समझता है। इस प्रकार वह हर तरह के दुख-कष्ट उठाता रहता है, क्योंकि वह सोचता है कि वह कुछ भी नहीं है; वह एक तुच्छ प्राणी है, वह किसी का गुलाम है; वह किसी देवी-देवता द्वारा परिचालित हो रहा है; और इसी कारण वह दु:खी रहता है।[२]

बीच-बीच में जीवात्मा पर एक प्रबल आघात पड़ता है; और तब वह कुछ दिन के लिए खाना छोड़कर उस अज्ञात ईश्वर की ओर अग्रसर होता है – उसका जीवन आलोक से आप्लावित हो उठता है। अब उसकी समझ में आ जाता है कि यह संसार झूठा दृश्यजाल मात्र है, परन्तु इन्द्रियाँ उसे फिर नीचे उतार लाती हैं और वह पुन: पूर्ववत् संसार के मीठे-कड़वे फलों के भोग में लग जाता है। एक बार फिर उसके जीवन में बड़ा कठोर आघात आता है; और फिर उसका हृदय एक बार फिर दिव्य प्रकाश के सम्मुखीन हो जाता है। इस प्रकार वह क्रमश: परमात्मा की ओर चलता रहता है और वह ज्यों-ज्यों उनके अधिकाधिक निकट पहुँचने लगता है, त्यों-त्यों वह देखता है कि उसका पुराना व्यक्तित्व – उसका निकृष्ट, कुरूप तथा परम स्वार्थी व्यक्तित्व – पिघलकर दूर होता जा रहा है।

जब वह ईश्वर के अत्यन्त निकट पहुँचकर उससे जुड़ जाता है, तब उसे बोध होता है कि वह स्वयं ही परमात्मा है और वह बोल उठता है –[३] 'अरे! जिन्हें मैं ईश्वर समझता था, वे तो मेरी अपनी ही महिमा में स्थित थे; और यह तुच्छ ''मैं'', यह सारा दु:ख-कष्ट – यह सब भ्रान्ति था; इनका कभी अस्तित्व ही नहीं था। मैं न कभी नारी था, न कभी पुरुष था और न कभी अन्य कुछ था।' इसके बाद जीवात्मा अपने सारे दुख-कष्टों को त्याग देती है।[४]

निचला पक्षी – ऊपर वाले पक्षी का प्रतिबिम्ब मात्र था। इसी प्रकार वस्तुत: हम परमात्मा से अभिन्न हैं; परन्तु प्रतिबिम्ब हमें अनेक का बोध कराता है – वैसे ही, जैसे कि एक ही सूर्य – करोड़ों ओस-बिन्दुओं पर प्रतिबिम्बित होकर करोड़ों छोटे-छोटे सूर्यों जैसा प्रतीत होता है। यदि हमें अपने वास्तविक दिव्य-स्वरूप के साथ अभिन्नता की अनुभूति करनी हो, तो प्रतिबिम्ब का नाश होना चाहिये। यह ब्रह्माण्ड – हमें अपने आपमें कभी सन्तुष्ट नहीं कर सकता। इसीलिये एक कंजूस अधिक-से-अधिक धन एकत्र करता रहता है; इसीलिये एक डकैत डाका डालता है और एक पापी पाप करता रहता है; और इसीलिये तुम दर्शन-शास्त्र पढ़ते रहते हो। इन सबका एक ही उद्देश्य है। मुक्ति पाने के अतिरिक्त हमारे जीवन का और कोई उद्देश्य नहीं है। जाने या अनजाने, हम सभी पूर्णता पाने की चेष्टा में लगे हुए हैं। हर प्राणी को इसे प्राप्त करना होगा।[५]

'वह' जो हर परमाणु में और सर्वत्र विद्यमान है; सभी वस्तुओं का सारतत्त्व और इस ब्रह्माण्ड का ईश्वर है – जान लो कि तुम वही हो – तत्त्वमसि – जान लो कि तुम मुक्त हो।... वेदान्त हमें यही शिक्षा देता है। यह हमें बताता है कि हम स्वरूपत: दिव्य हैं। यह समस्त प्राणियों के सच्चे एकत्व का बोध कराता है; और बताता है कि परमात्मा स्वयं ही हमारे रूप में इस धरती पर प्रकट हुआ है। हमारे पाँवों के नीचे रेंगनेवाले अति क्षुद्र कीट से लेकर, जिन्हें हम अत्यन्त विस्मय की दृष्टि से देखते हैं, उन सर्वोच्च प्राणियों तक – सभी उन एकमात्र परमात्मा की ही अभिव्यक्तियाँ हैं।[६]

जैसे नीचे वाले पक्षी को पता चला कि वह सर्वदा ऊपरवाला पक्षी ही था, वैसे ही यदि हम भी निरन्तर प्रयत्न करते रहें, तो हमें पता चलेगा कि हम सदा-सर्वदा ही आत्मा थे और बाकी सब कुछ स्वप्न मात्र था। भौतिक पदार्थों तथा उनकी सत्यता पर हर तरह के विश्वास से स्वयं को पूर्णत: पृथक् कर लेना – यही सच्चा ज्ञान है। हमें निरन्तर स्मरण रखना चाहिए – ॐ तत् सत् – एकमात्र ॐ की ही सत्ता वास्तविक है। यही वेदान्त की आधारशिला है – 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या – एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, बाकी सब कुछ मिथ्या है' और 'अहं ब्रह्मास्मि – मैं ब्रह्म हूँ।' हम इसकी तब तक आवृत्ति करते रहें, जब तक कि यह हमारे व्यक्तित्व या अस्तित्व का अंग न बन जाय; और तभी हम हर प्रकार के द्वैतभाव से, भले-बुरे से, सुख-दुख से, कष्ट और आनन्द से ऊपर उठ सकेंगे; और जान सकेंगे कि हम शाश्वत, अपरिवर्तनशील, असीम, 'एकम् एव अद्वितीयम्' ब्रह्म हैं।[७]

(क्रमश:)

२. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २४१

३. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ३, पृ. १५७-८; खण्ड ८, पृ. ११२

४. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २४१

५. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड २, पृ. २९९

६. वही, खण्ड ८, पृ. ११२; खण्ड ३, पृ. १५८

७. वही, खण्ड ६, पृ. २५५

स्वामीजी की प्रार्थना : हे माँ जगदम्बे! मुझे मनुष्यत्व दो

स्वामी मेधजानन्द

एक बार नरेन्द्रनाथ ने अपने पिता से प्रश्न किया, ''आपने मेरे लिए क्या किया है?'' अर्थात् नरेन्द्र अपने पिता से पूछ रहे थे कि आपसे मुझे विरासत में क्या मिला है? उनके पिता ने बहुत ही सुन्दर उत्तर दिया, ''जाओ, अपने को दर्पण में देख लो।'' नरेन्द्रनाथ समझ गए कि उनके पिता ने सचमुच उन्हें क्या दिया है, वह वस्तु है – मनुष्यत्व, जिसकी परिणति परवर्तीकाल में स्वामी विवेकानन्द के रूप में होती है।

स्वामी विवेकानन्द के गुरु भगवान श्रीरामकृष्ण देव मनुष्य शब्द की सुन्दर व्याख्या करते हैं। वे मानुष शब्द का अर्थ मान और हूँश (होंश) करते हैं, अर्थात् वह व्यक्ति जिसे अपनी गरिमा का भान है, वह मनुष्य है। एक छोटा-सा बादल जाज्वल्यमान सूर्य को ढँक देता है। सूर्य अपने स्थान पर ही है, किन्तु कुछ बादलों के कारण वह ढँक जाता है, दिखाई नहीं देता है। इसी प्रकार व्यक्ति मूलत: सर्वशक्तिमान है, किन्तु दुर्बलता के बादलों से उसका वास्तविक स्वरूप ढक जाता है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''जैसै-जैसे मेरे दिन बीतते जा रहे हैं, उतना ही मुझे सब कुछ पौरुष में प्रतीत होता दिखाई देता है और यही मेरा अभिनव सन्देश है।'' यह पौरुष अथवा मनुष्य का दिव्यत्व ही स्वामीजी का अभिनव सन्देश था। व्यक्ति बुरे कार्य तभी करता है, जब वह अपना स्वरूप भूल जाता है। व्यक्ति जब अपना दायरा सीमित कर लेता है, तभी उसे भय लगता है और वह बुरे कार्य करने लगता है। इसलिए सर्वप्रथम यह चिन्तन करना है कि मनुष्य के रूप में हमारा व्यक्तित्व किन तत्त्वों से बना है।

कुरुक्षेत्र के समरांगण में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा के बारे में उपदेश दे रहे थे। दैवी और आसुरी दोनों का अन्तर बताने के बाद उन्होंने महापराक्रमी अर्जुन से कहा, ''हे अर्जुन तू शोक मत कर, क्योंकि तुम्हारा जन्म दैवी सम्पदा के अधिकारी के रूप में हुआ है।'' इतिहास का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि जीवन में जो लोग महान बने हैं, उन्हें सदा अपनी गरिमा का भान रहता था। उनमें यह बोध रहता था कि उनके भीतर असीमित ऊर्जा है और वे उसे जिस भी कार्य में लगाएँगे, उसका फल उन्हें अवश्यमेव प्राप्त होगा। उनका जीवन कर्मठ था। इसके अलावा उनमें से कुछ महान लोगों में एक दुर्लभ गुण यह था कि उन्होंने अपना समस्त जीवन दूसरों की सेवा के लिए, मानवमात्र की भलाई के लिए खपा डाला था।

एक सामान्य किसान, मोची अथवा मेहतर भी किसी सोफ्टवेयर कम्पनी में कार्य करने वाले व्यक्ति से अधिक मनुष्य हो सकता है। अमुक कार्य किसी व्यक्ति को महान नहीं बनाता है, वरन् व्यक्ति की महानता ही अमुक कार्य को महान बनाती है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सक्षम होने में ही आदर्श युवा की यथार्थता है । जिसका हृदय वज्र से अधिक कठोर हो और फूल से भी अधिक कोमल हो, ऐसा हृदय ही संसार को कुछ दे सकता है।

दुर्बलताओं पर सदैव विजय प्राप्त करने का प्रयास करने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है। दुर्बल व्यक्ति के लिए योग तो दूर की बात, इस संसार का भोग भी दुर्लभ हो जाता है। वर्ष-पर-वर्ष व्यक्ति यदि यह कहता रहे कि वह दुर्बल है, शक्तिहीन है, तो उसका जीवन नकारात्मक विचारों का पुंज हो जाता है। इन सभी दुर्बल विचारों को पैरों तले रौंदने का एक ही रास्ता है कि हम अपने बल, शक्ति और दैवी गुणों का चिन्तन करें। जब हम अपने बलप्रद पवित्र गुणों का चिन्तन करते हैं, तभी हम अपने-आप से सत्य कहते हैं। वेदान्त यही कहता है कि हम सर्वशक्तिमान, पवित्र और दिव्य गुणों से सम्पन्न हैं और अपने दिव्य स्वरूप के भान में ही हमारे मनुष्यत्व की सार्थकता है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे, ''..रात-दिन कहते रहो कि हे गौरीनाथ! हे जगदम्बे! मुझे मनुष्यत्व दो, माँ! मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो, मुझे मनुष्य बनाओ। ○○○

नारी-शक्ति का आदर्श – माँ सारदा

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

(गतांक से आगे)

संसार की किसी देश की नारी मातृत्व को, नैतिक मूल्यों को, अस्वीकार नहीं कर सकती है। वह नहीं कह सकती है कि उसके जीवन में इसका कोई मूल्य नहीं है। जिन देशों में इन मूल्यों की ओर वहाँ की कन्याओं का, महिलाओं का ध्यान नहीं है, वे देश रसातल में जा रहे हैं। उनके यहाँ केवल अशान्ति, हिंसा, द्वेष व्याप्त हैं, वे इनसे पीड़ित हैं। वे संसार का कोई सुख नहीं भोग पा रहे हैं। क्यों? क्योंकि मनुष्य का जन्म केवल शरीर पर निर्भर रहकर, शरीर पर प्रतिष्ठित होकर जीने के लिए नहीं हुआ। मनुष्य के भीतर जो दिव्यत्व है, जो ईश्वरत्व है, उसको जब तक जगाने का प्रयास न हो, मनुष्य को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। उसका सरलतम उपाय है, उस दिव्य-शक्ति की मातृरूप में उपासना करना। इसके द्वारा मनुष्य के भीतर सोई हुई शक्ति एकदम जाग जाती है।

कैसे श्रीमाँ से मिलकर एक डाकू में वात्सल्य भावना जागृत हो जाती है ! वह भी तब, जब माँ बिलकुल अकेली थीं। वह मीलों लम्बा मैदान था। संध्या का समय था। चारों ओर सुनसान, एकदम वीरान था। उस समय वहाँ बहुत-से नर-हत्यारे रहते थे। वे थोड़ी-थोड़ी सी बात में मनुष्यों की हत्या कर देते थे। माँ के साथी उन्हें छोड़कर चले गये थे। माँ ने थोड़ी दूर पर कोई विशाल मोटे पुरुष आकृति को आते हुये देखा, जो कन्धे पर एक बहुत बड़ी लाठी लिये हुए था। उसके घुँघराले बाल थे। उसने पास आते ही कड़क कर पूछा – कौन हो? उस सुनसान स्थान में जहाँ भगवान के अतिरिक्त और कोई रक्षा करने वाला नहीं है, माँ को तो भयभीत होकर चीत्कार करते हुये भागना चहिये था। किन्तु माँ ने अत्यन्त शान्त चित्त से कहा – ''पिताजी, मैं तुम्हारी बेटी सारदा हूँ।'' यह कहते ही वह वज्र हृदय डाकू एकदम पिघल जाता है। उसने कहा – ''चिन्ता मत करो। मेरे साथ मेरी पत्नी भी आ रही है।'' थोड़ी देर में एक महिला आयी और उसको देखते ही माँ उसके हृदय से लिपट गईं। कहती हैं – ''मैं तुम्हारी पुत्री सारदा हूँ। यहाँ मैं अकेले कैसी विपत्ति में पड़ गयी थी। पिताजी और तुम न आते, तो मेरी क्या दुर्गति होती। तुम्हारे जमाई दक्षिणेश्वर में रहते हैं। मैं वहीं जा रही थी। साथी मुझे छोड़कर चले गये।'' उस महिला ने स्वजात पुत्री से भी सहस्त्र गुना अधिक स्नेह से माँ को गले से लगा कर कहा – बेटी, चलो अभी रात हो गयी है।

डाकू दम्पती माँ को ले जाते हैं। ये दस्यु-पत्नी अपने वस्त्र बिछाकर माँ को सुलाती है और डाकू एक दुकान से कुछ खाने के लिये लाता है। यह दस्यु-पत्नी प्रेम से माँ को खिलाती है और दस्यु रात भर हाथ में लाठी लिये पहरा देता है। कैसे हुआ ये? बाद में जब माँ ने स्वयं उन लोगों से पूछा कि कैसे आप लोगों ने मेरी रक्षा की, तो डाकू दम्पती कहते हैं – बेटी, तू हमारी साधारण पुत्री नहीं है, हमने तुझमें माँ काली के दर्शन किये। ऐसा कैसे हुआ? क्योंकि श्रीमाँ अपने जीवन में मातृत्व में प्रतिष्ठित थीं, जो नारी जाति का आदर्श है। जब तक यह आदर्श स्वीकृत नहीं होगा, तब तक दाम्पत्य जीवन में, समाज में शान्ति नहीं आ सकती।

मातृत्व में प्रतिष्ठित होने के लिये मूल्य चुकाना पड़ता है। जिन माताओं ने मातृत्व का मूल्य नहीं चुकाया, वे केवल जननी मात्र बनकर रह गईं। जो आदर्श श्रीमाँ ने हमारे सामने रखा, यह आदर्श संसार की किसी भी महिला के लिए उपयुक्त है । सभी नारियों की यह आकांक्षा रहती है कि वे जीवन में माँ होकर प्रतिष्ठित हों। क्योंकि मातृत्व उनके रक्त में है, उनके रोम-रोम में है। मातृत्व की प्रतिष्ठा जब नारी के जीवन में आती है, तो उसके जीवन में समस्त संसार के लिए प्रेम उमड़ पड़ता है।

माँ के जीवन की एक दूसरी घटना है। माँ का जयरामबाटी में मकान बन रहा है। श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य और स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई स्वामी सारदानन्द जी महाराज थे। ये माँ सारदा को जगत्-जननी, प्रत्यक्ष दुर्गा और काली के रूप में देखते थे। दिन-रात उनकी सेवा में रहते थे। माँ जयरामबाटी में जिस मकान में रहती थीं, वह मकान छोटा था, तो उन लोगों ने सोचा कि माँ के लिए बड़ा मकान बनवा दिया जाय। मकान का काम शुरू हुआ। अंग्रेजों का राज्य था। आसपास के जो जुलाहे कारीगर थे, वे लोग रेशम आदि के कपड़े बनाते थे। अंग्रेजी कपड़ों के कारण उन बेचारों का धन्धा ही चौपट हो गया था। इससे अधिकांश चोर-लुटेरे हो गये थे। एक बदमाश था। वह घूमता-फिरता और चोरी करता। एक दिन वह घूमते हुये माँ के गाँव में आया। उसने देखा कि मकान बन रहा है, तो उसने काम पर लगाने की माँ से प्रार्थना की। गाँव के लोग बहुत डरे। अरे ! यह तो

चोर है। माँ ने सुना, तो कहा – बेटा, कोई काम हो, तो इसे दे दे। उसे ब्रह्मचारी ने काम पर लगा लिया। वह काम करने लगा। उसका नाम था अमजद। वह काम करता और माँ कभी जातीं, तो बड़ी श्रद्धा से प्रणाम करता। माँ भी उसे आशीर्वाद देती थीं।

एक दिन माँ ने उसे भोजन करने का निमंत्रण दिया। गद्‌गद हो गया सुनकर कि माँ ने मुझे भोजन करने को बुलाया है। उसे आश्चर्य भी हुआ कि वे एक ब्राह्मणी हैं, मैं मुसलमान हूँ, फिर भी मुझे भोजन करने के लिए बुलाया है। माँ का सन्तान पर आकर्षण होता है। दोपहर को गया भोजन करने के लिए। बरामदे में माँ ने पत्तल लगा रखी थी। वहाँ उसको बिठा दिया। माँ अन्दर रसोई में गईं। माँ की भतीजी थी नलिनी। माँ ने नलिनी को भोजन परोसने के लिये भेजा। नलिनी के मन में बहुत छुआछूत का रोग था। नलिनी ने जब देखा कि बुआजी ने मुसलमान को खाने के लिये बुलाया है, तो आधा उसका दिमाग खराब हो गया। जो हो, बुआ कह रही हैं, तो परोसने गयी और फेंक-फेंककर परोसने लगी कि कहीं स्पर्श न हो जाय। माँ ने जब दूर से देखा तो दौड़कर आयीं। उसके हाथ से बर्तन छीन लिया और डाँटने लगीं – इस तरह खिलाया जाता है? उसके बाद जैसे गर्भधारिणी माँ अपने बच्चे को पास बैठाकर बड़े प्रेम से खिलाती है, उसी प्रकार माँ अमजद के पास बैठ जाती हैं और प्रेम से खिलाने लगीं । अमजद ने भी अत्यन्त तृप्तिपूर्वक भोजन किया। भोजन के बाद पत्तल उठाने लगा, तो माँ ने मना कर दिया। माँ का यह नियम था कि उनके घर जब कोई भोजन करता, तो माँ कहती थीं – नहीं, ये बेटों का काम नहीं है। यह तो हम लोगों का काम है। माँ ने अमजद को विदा कर दिया।

नलिनी ने देखा तो चीख पड़ी – बुआ, ये क्या कर रही हो? तुम पत्तल उठाओगी ! तुम्हारी जाति चली जायेगी। तुम ब्राह्मणी हो ! तब जगत् जननी ने अपना जो मातृत्व प्रकाशित किया है, वही नारी के जीवन का आदर्श है। भगवान श्रीरामकृष्ण देव के स्वनामधन्य शिष्य, ब्रह्मज्ञ पुरुष स्वामी सारदानन्दजी महाराज, उनके पूर्वाश्रम का नाम शरत् था। माँ ने कहा – मूर्खा, जैसे शरत् मेरा बेटा है, वैसे ही अमजद भी मेरा बेटा है। कहाँ एक ओर ब्रह्मज्ञ पुरुष, भगवान श्रीरामकृष्ण देव के साक्षात् शिष्य स्वामी सारदानन्द जी महाराज और दूसरी ओर एक चोर, लुटेरा, मुसलमान डाकू। माँ की दृष्टि में दोनों में कोई भेद नहीं था। कैसे हुआ यह? यह मातृत्व में पूर्ण प्रतिष्ठित होने के कारण हुआ। नारी के जीवन का आदर्श यह मातृत्व है।

पवित्रता, प्रेम, त्याग और बलिदान जिस माँ में न हो, वह क्या माँ हो सकती है? संसार में कोई ऐसी माँ नहीं है, जो त्याग करने को प्रस्तुत न हो। अपनी संतान के लिये माँ सब कुछ त्याग सकती है। पवित्रता और प्रेम की पूर्णता नारी के जीवन में ही देखने को मिलती है। संसार के सभी देशों में सेवाभावना के कारण ही महिलाओं को नर्स के रूप में रखा जाता है। आप पुरुष को हजार ट्रेनिंग दे दीजिए, किन्तु वह कभी वैसी सेवा नहीं कर सकेगा, जो माताएँ कर पाती हैं। क्योंकि उनके हृदय में प्रेम है, उनकी प्रकृति ही सेवा की है, उनका स्वभाव ही सेवापरक है।

श्रीमाँ नारी जाति का आदर्श थीं। असीम प्रेम और गंगा की तरह पवित्रता जिस बालिका के, जिस महिला के जीवन में है, वह वंदनीय है, वह मुक्त है। जय माँ। ○○○

पृष्ठ १५ का शेष भाग

मैं ७ अक्तूबर को ग्लासगो या लिवरपुल (जहाँ से भी टिकट मिले) से रवाना हो रही हूँ और इसके लिये कदाचित् विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद मुझे रात की गाड़ी पकड़नी होगी। आशा है कि कल तक मुझे अपने भाग्य का पता चल जायेगा – परन्तु यदि मेरी योजना के अनुसार हुआ, तो मैं एलेन लाइन के मंगोलियन से १७ तारीख को न्यूयार्क पहुँच जाऊँगी।

मैकनील दम्पति ने श्री तथा श्रीमती लेगेट को अपना स्नेह भेजा है। श्री मैकनील का विचार है कि इस पृथ्वी के भाग्य में अंग्रेज तथा अमेरिकियों के अधीन रहना ही लिखा है, न कि दीन-दुर्बलों के। परन्तु जब मैंने अमेरिका में हो रहे व्यक्तिगत आक्रमण की स्वाधीनता के बारे में कुछ कहा, तो वे बोले कि वे अमेरिकी लोगों के विषय में अपनी धारणा पर पुनर्विचार करेंगे।

इस प्रकार के लोग, जो दलीय सीमा के बाहर रहते हैं, इनके द्वारा आपकी मर्यादा को सहज शान्त भाव से स्वीकार कर लेना अंग्रेज-जीवन का एक अत्यन्त सन्तोषजनक पक्ष है।

आपकी कन्या

निवेदिता

(क्रमशः)

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (११)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं। उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, ''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।'' गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

गुडविन के अमेरिका लौटने के बाद स्वामीजी ने यह निर्णय लिया कि गुडविन न केवल उनके साथ भारत जाएँ, किन्तु संन्यास भी ग्रहण करें। २० नवम्बर को गुडविन ने श्रीमती बुल को लिखा, ''जैसा स्वामीजी चाहते हैं, मैं (भारत) जाने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ।''

श्रीमती बुल को लिखे ८ दिसम्बर के पत्र में गुडविन ने इसका सविस्तार वर्णन किया, ''स्वामीजी कहते हैं कि श्रीरामकृष्ण देव के जन्मोत्सव पर उपस्थित ५०,००० दर्शनार्थियों (जो उन्हीं का आँकड़ा है) के सामने मुझे बोलना होगा। किन्तु मै बड़े खेदपूर्वक कहता हूँ और जैसा कि मुझे लगता है कि स्वामीजी समस्या का उपचार करते-करते कभी-कभार व्यर्थ बोल देते हैं...मुझे ठीक मालूम नहीं कि मुझे क्या करना है, किन्तु निस्सन्देह स्वामीजी यह चाहते हैं कि मैं वहाँ व्याख्यान दूँ और मैं भी यह कार्य यथाशक्ति करूँगा। वैसे स्वामीजी का वहाँ बार-बार सुनने के बाद मेरा बोलना मुझे निरर्थक ही प्रतीत होता है। किन्तु उनका मानना है कि यदि एक अंग्रेज दरिद्र भारतवासियों के बीच रहकर उनके समान जीवन यापन करता है, तो उसका कुछ निश्चित प्रभाव हो सकता है। मुझे इस बात की बहुत प्रसन्नता होगी यदि मैं उनके कार्य में थोड़ी भी सहायता कर सकूँ, चाहे वह कुछ बोलकर हो अथवा व्यक्तिगत जीवन का दृष्टान्त देकर। किन्तु इसके लिए मुझे स्वयं को अत्यधिक उन्नत होना होगा।''

यद्यपि स्वामीजी के मन में भारत का चिन्तन ही प्रधान था, तो भी अपने कार्य को वे निरन्तर वैश्विक स्तर पर सोच रहे थे। नवम्बर १८८६ में गुडविन ने श्रीमती ओली बुल को जो पत्र लिखे थे, उनसे ज्ञात होता है कि स्वामीजी रशिया जाने के लिए 'अत्यन्त व्यग्र' थे, यदि वहाँ कुछ व्याख्यानों की व्यवस्था हो सके। गुडविन के निम्नलिखित पत्र से स्वामीजी की योजनाओं का एक अन्य विवरण भी प्राप्त होता है, ''वे (भारत से) अमेरिका लौटते समय जापान और चीन में व्याख्यानों की व्यवस्था करना चाहते हैं।'' यद्यपि उनके जीवनकाल में ये दोनों योजनाएँ फलित न हो सकीं, तो भी इन सुदूरवर्ती देशों में कार्य करने की उनकी महान इच्छा इस भविष्यवाणी का द्योतक थी कि एक दिन उनका सन्देश दिग्-दिगन्त तक प्रसारित होगा।

स्वामीजी के द्वितीय लन्दन प्रवास के दरम्यान गुडविन के दिन स्वामीजी के व्याख्यानों को आशुलिपि में लिखना, लिपिबद्ध करना, भोजन पकाना और घर की देख-रेख में व्यतीत होते थे। वे समय निकालकर स्वामी अभेदानन्द को नगर-दर्शन कराने भी ले जाते थे। स्वामीजी चाहते थे कि स्वामी अभेदानन्द वहाँ के सभी दर्शनीय स्थलों से परिचित हों और विभिन्न क्षेत्रों के लोगों से मिलें। स्वामीजी के साथ परिभ्रमण के लिए जाना, न केवल व्याख्यान हेतु, अपितु रात्रिभोज, निजी बैठक और कुछ रोचक गूढ़ परिस्थलों का भ्रमण – यह गुडविन के लिए विशेष आनन्द था। गुडविन ने श्रीमती बुल को लिखा था, ''मैं दोनों स्वामियों को आज सुबह 'स्मिथफील्ड क्लब कैटल शो' में ले गया था। हमारे स्वामी मोटे सूअरों को देखने के लिए बहुत आतुर थे, जिनके बारे में उन्होंने सुना था।''

गुडविन के अन्दर मानो असीमित ऊर्जा थी। अपने फुरसत के कुछ मिनटों में वे संस्कृत पढ़ते थे। उन्होंने वेदान्त दर्शन पर प्रस्तावनारूप एक पुस्तिका लिखने का भी प्रयत्न किया था। कुछ और भी रचनाओं के बारे में उन्होंने सोचा था, उदाहरण के तौर पर ग्रीनेकर कॉन्फ्रेन्स में पढ़े गए लेखों का संग्रह कर वे 'ग्रीनेकर बुक' तैयार करना चाहते थे। इसके अलावा 'ग्रीनेकर नोट्स' से संग्रह कर 'दैनिक सुविचार' पुस्तक तैयार करने की भी उनकी योजना थी। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया था कि गुडविन ने उत्साहपूर्वक अमेरिका में वेदान्त पत्रिका भी शुरू करने का प्रयत्न किया था।

केवल एक अथक ऊर्जावान व्यक्ति ही स्वामीजी के साथ कदम मिलाकर चल सकता था। महेन्द्रनाथ दत्त अपने संस्मरणों में लिखते हैं, ''...(एक दिन) गुडविन अपना कार्य

समाप्त करने के बाद विभिन्न लोक-नृत्यों को दिखाते हुए नृत्य और विनोद करने लगे। इसे देख स्वामी सारदानन्द जी ने कहा, ''देखो तो! अँग्रेज लोग कितना परिश्रम कर सकते हैं ! इस गुडविन को देखो ! पूरा शहर घूमकर आया, फिर प्रूफ-पेपरों को पढ़ा और अब देखो, यह नाच रहा है। इतनी शक्ति न होती, तो क्या यह जाति इतना ऊपर उठ पाती?''

गुडविन में विलक्षण प्रतिभा और क्षमताएँ तो थीं ही, इसके अलावा उन्होंने अपना अधिकांश समय स्वामीजी के साथ जो व्यतीत मात्र किया था, उसके लिए हमें उनके प्रति कृतज्ञ रहना चाहिए। उनके लिखे हुए अनेक पत्र यदि उपलब्ध न होते, तो स्वामीजी के जीवन की जो हृदयस्पर्शी घटनाएँ आज हमारे बीच हैं, वे सब लुप्त हो जातीं। उदाहरण के तौर पर, गुडविन द्वारा श्रीमती बुल को लिखे २९ नवम्बर के पत्र से ज्ञात होता है, ''उस दिन एक बहुत ही सुन्दर घटना घटी। स्वामीजी रेलवे स्टेशन जा रहे थे। तभी किसी दरिद्र बच्चे ने आकर उनकी बाँह पकड़ी और उसे अपने सिर से छुलाने लगा। स्वामीजी ने पहले उसे पहचाना नहीं, किन्तु उस बच्चे ने कहा, 'क्या आपने मुझे पहचाना, उस दिन आपने मुझे पैसे दिए थे।' बात यह थी कि स्वामीजी ने एक दिन उस बच्चे को दूसरे बच्चे के साथ झगड़ा करते देखा। उन्होंने झगड़ा सुलझाकर दोनों को एक-एक पैसा दिया। वह बच्चा अपने इस आचरण से मानो अपना स्नेह प्रदर्शित कर रहा था।''

स्वामीजी और स्वामी अभेदानन्द के साथ गुडविन घनिष्ठतापूर्वक रहे। निस्सन्देह इस संग से गुडविन के विचारों को दार्शनिक पोषण प्राप्त हुआ। दोनों स्वामीजी तेजस्वी और विद्वान थे। इसके अलावा दोनों की शास्त्रार्थ में रुचि थी। किन्तु इसे गुडविन का दुर्भाग्य कहें अथवा सौभाग्य, दोनों स्वामी के बीच बंगाली में ही दीर्घ दार्शनिक चर्चाएँ होती थीं। १ नवम्बर को श्रीमती बुल को लिखे पत्र में गुडविन ने इसका उल्लेख किया है, ''मैं यह जो पत्र लिख रहा हूँ, इस समय रात के बारह बजे हैं और दोनों स्वामीजी बृहदारण्यक उपनिषद के एक वाक्य पर बंगाली में लम्बी चर्चा कर रहे हैं, जिसे अब तक दो घण्टे हो चुके हैं...''

हेल बहनों को २६ नवम्बर के लिखे पत्र में स्वामीजी ने अँग्रेज लोगों के बारे में कहा था, ''...यदि एकबार आपने उनके हृदय को स्पर्श कर लिया, तो वे सदा के लिए आपके हैं...मुझे अब समझ में आ रहा है कि विधाता ने क्यों उन्हें अन्य जातियों से अधिक गौरवान्वित किया है। वे अत्यन्त धीर और निष्ठावान हैं। उनकी बाह्य सतह पर दृढ़ता का आवरण मात्र है, यदि वह टूट जाए, तो वे आपके हैं।''

स्वामीजी अपने कुछ अँग्रेज लोगों के साथ भारत लौटना चाहते थे, वे अंग्रेज जिनका हृदय सदा के लिए स्वामीजी के प्रति समर्पित हो गया था। वे थे गुडविन और सेवियर दम्पती।

स्वामीजी ने अपना अन्तिम प्रवचन 'अद्वैत वेदान्त' १० दिसम्बर को दिया। यद्यपि इसके विषय में गुडविन ने अपने पत्र में श्रीमती बुल को लिखा था, किन्तु इसकी प्रतिलिपि कभी प्राप्त न हो सकी। गुडविन के पत्र में हम इस प्रखर व्याख्यान की थोड़ी-बहुत जानकारी पाते हैं, ''...वे कर्म के बारे में कह रहे थे। इस विषय पर उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने यह स्वीकार किया कि व्याख्यानों में यह आवश्यक है कि कर्म के आदर्श का प्रचार किया जाए, किन्तु इस ओर भी इंगित किया कि केवल कर्म-सिद्धान्त (उदाहरण के तौर पर बौद्ध धर्म) ही पर्याप्त नहीं है। शुभ कार्य का फल शुभ होता है और अशुभ का अशुभ। कारण और कार्य का क्रम अनन्त है, चाहे कार्य शुभ हो अथवा अशुभ। कर्म को केवल प्रारम्भिक सोपान मानना चाहिए। उन्होंने यह बात प्रबल आग्रहपूर्वक कही कि केवल कर्म से हमें कभी मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। पहले से ही प्राप्त मुक्ति (अर्थात् हम पहले से ही मुक्त हैं) का साक्षात्कार करने के लिए मन को सक्षम बनाना होगा। इसके लिए शुभ कर्म आवश्यक हैं, किन्तु शुभ कर्मों को विवेक के साथ करना होगा और मनुष्य को कर्म-त्याग कब करना है, यह भी जानना होगा।

''हमें स्थानीय और सार्वजनीन दोनों धर्मोपदेशों का अन्तर जानना होगा (उन्होंने उसी सन्ध्या को यह बात कही थी) और इस सन्दर्भ में ईसामसीह के स्थानीय सर्वोच्च धर्मोपदेश का स्थान भगवान बुद्ध के सर्वोच्च वैश्विक धर्मोपदेश के पहले आता है। 'स्थानीय' शब्द से स्वामीजी का आशय है कि ईसामसीह ने १) अपने उपदेशों को व्यक्तिगत रूप दिया २) उनका प्रेम दूसरे लोगों की तुलना में कुछ के प्रति अधिक था इत्यादि। इसके विपरीत बुद्ध सदैव वैश्विक और अनन्त सत्ता के स्तर पर कार्य रहे थे।...उन्होंने व्यक्तिसापेक्ष ईश्वर की धारणा और विशेषकर ईसामसीह की 'विशेष' दिव्यता के विरोध में भी जमकर कहा। 'यदि केवल ईसामसीह ही ईश्वर हैं, अन्य कोई नहीं, तो किसी व्यक्ति के लिए क्या आशा हो सकती है?' '' **(क्रमशः)**

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (२९)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

उस वातावरण से बाहर निकल जाओ

यदि बिना हवा के चारों ओर से बन्द कमरे में किसी को बन्द कर दिया जाए, तो वह किसी भी प्रकार से बाहर निकलने का प्रयास करेगा। खिड़की दरवाजे तोड़कर भी बाहर खुले में चला जाएगा। इसी प्रकार जब ऐसी बुरी परिस्थिति आ जाये, मनुष्य उसमें घुटन का अनुभव करे, तब खुले में चले जाना चाहिए। जब मन में दुविधा चल रही हो, 'इस पार या उस पार' का निर्णय करने में मन तत्पर न हो, तो उस स्थान से तत्काल बाहर निकल जाना चाहिए। यदि कुछ दिन बाहर रह सकें, तो बहुत उत्तम होगा। तीर्थयात्रा के लिए चले जाओ अथवा किसी स्नेही स्वजन के यहाँ दो-चार दिन रहो, नहीं तो किसी देवस्थान में नदी किनारे चले जाओ। दो-चार दिन का स्थानान्तर भी मन की स्थिति को बदलने के लिए पर्याप्त होता है। यदि बाहर जाने की स्थिति में न हो, तो अपने गाँव में ही नदी के किनारे, समुद्र के किनारे या खुले मैदान में कुछ देर शान्ति से बैठे रहो। मन में कुछ भी विचार मत करो। प्रकृति के सान्निध्य में बैठने से प्रकृति में स्थित शान्ति का अवतरण होता है। किसी वृक्ष के नीचे भी बैठने से शीतलता और ताजगी मिलती है। दो-चार घंटे बाहर निकल जाने से, मन पर सवार भूत भाग जाता है और फिर स्वस्थ चित्त से विचार करने से लगता है कि मैंने स्वयं परिस्थिति को जितना विकट मान लिया था, उतनी विकट वह है नहीं। सभी समस्याओं का समाधान हो सकता है, ऐसी हिम्मत आ जाती है।

सद्ग्रन्थों का पठन – जीवन में कभी-कभी ऐसा होता है कि चारों ओर से मुश्किलों की मार पड़ने लगती है, उस समय तत्काल किसी मार्गदर्शक के पास जाने की स्थिति नहीं होती है, कहीं बाहर जाना भी सम्भव नहीं होता है, तब क्या करें? ऐसे समय श्रीमद्भगवद्गीता, भागवत, बाईबिल, उपनिषद, ऐसे सद्ग्रन्थों की शरण में जाओ। ये सद्ग्रन्थ कोई निर्जीव पुस्तकें नहीं हैं, ये महान ज्ञान के वाहक हैं। साथ ही इन सद्ग्रन्थों की रचना जिन्होंने की है, उनकी सुप्त चेतना को भी वे धारण करती हैं। सद्ग्रन्थ का एक पन्ना भी पढ़ने से उसके सर्जक की महान चेतना के सूक्ष्म सान्निध्य में हम चले जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता को पढ़ते हुए हम साक्षात् भगवान कृष्ण के सम्मुख सूक्ष्म रूप से पहुँच जाते हैं और गीता में से ही परिस्थिति की समस्या का समाधान हमें भगवान श्रीकृष्ण देते हैं। गीता का एकाध श्लोक, श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का एकाध प्रसंग, बाईबिल का एकाध वाक्य भी हताशा में से निकालने के लिए पर्याप्त है। सद्ग्रन्थों का पाठ करने से हमें पता भी नहीं चलता है और हमारी मन की स्थिति बदल जाती है। स्वामी विवेकानन्द के अग्निमन्त्र के समान वाक्यों की एक बहुत-सी छोटी-सी पुस्तक है, जिसका नाम है 'शक्तिदायी विचार', उसके वाक्यों में थके-हारे, निराश, जीवन जीने की इच्छा खो चुके मनुष्यों में प्रचंड शक्ति जागृत करने की प्रबल शक्ति है। विपत्ति के समय ऐसी पुस्तक के एक-दो वाक्य भी जीवन में शक्ति का संचार कर देते हैं। उदाहरणस्वरूप, ''यह एक महान सत्य है – शक्ति ही जीवन है, दुर्बलता मृत्यु है। शक्ति आनन्दरूप है, शाश्वत और अमर है। दुर्बलता सतत तनाव है, यातना है, मृत्यु है।''

''दुर्बलता का चिन्तन करते रहना, दुर्बलता को दूर करने का उपाय नहीं है। इसका उपाय है – शक्ति का चिंतन करना। मनुष्य के अंदर पहले से ही जो बल है, उसके प्रति उसे सचेत बनाओ।''

''लक्ष्य पर पहुँचने का एकमात्र मार्ग यही है कि अपने आपको और सभी को कहो कि हम दिव्य हैं। जैसे-जैसे हम इसे याद करते जायेंगे, वैसे-वैसे शक्ति बढ़ती जायेगी। पहले जो लड़खड़ाता था, वह अधिक से अधिक बलवान बनेगा। आवाज की शक्ति बढ़ेगी और अन्त में सत्य हमारे हृदय पर अधिकार कर लेगा। हमारी नाड़ियों में सत्य प्रवाहित होने लगेगा, हमारे शरीर में सत्य ओतप्रोत हो जायेगा।''

''जो कुछ भी शक्ति और सहायता तुम्हें चाहिए, वह तुम्हारे स्वयं के अन्दर है, अत: अपने भविष्य का तुम स्वयं निर्माण करो।''

''बीती बातों को याद करने की आवश्यकता नहीं है।''

''तुम्हारे सामने अनन्त भविष्य पड़ा है। हमेशा याद रखो कि जिस प्रत्येक शब्द का तुम उच्चारण करते हो, जो प्रत्येक विचार तुम करते हो और जो प्रत्येक कार्य तुम करते हो, इससे तुम अपने लिये संस्कार की पूंजी एकत्रित कर

रहे हो। जैसे बुरे विचार और बुरे कार्य तुम्हारे ऊपर बाघ की तरह हमला करने को तैयार होते हैं, उसी प्रकार दूसरी ओर प्रेरक आशा की किरणें भी हैं, तुम्हारे सुविचार और सत्कर्म तुम्हारा बचाव करने के लिये हजारों देवताओं की शक्ति से सदा तैयार रहते हैं।''

संतों, महात्माओं और महापुरुषों के जीवन के अनुभवों से प्रकट हुई ऐसी ज्ञानधारा मनुष्य के मन पर छायी सभी मलिनता को धो डालती है। मन को स्वच्छ, पवित्र और विशुद्ध बना देती है। ऐसे विशुद्ध मन में व्यक्ति को अपने सच्चे जीवन-कार्य का ज्ञान हो जाता है।

सेना में काम करने वाला एक युवक मन से बिल्कुल टूट गया था। भारत-पकिस्तान के युद्ध में उसके सभी साथी मारे गये थे। वह स्वयं जो जीप चला रहा था, उस पर भी बम गिरा था और वह स्वयं मुश्किल से बचा था। लेकिन उसका मन बहुत उदास हो गया था। अब जीवन से रस चला गया था। एक रात को वह दिल्ली रेलवे स्टेशन पर चलती गाड़ी की पटरी पर कूदकर आत्महत्या करने की सोच रहा था, परन्तु किसी कारण उस रात अपने निश्चय को पूरा नहीं कर पाया, उसने दूसरे दिन पर छोड़ दिया। दूसरे दिन वह समाचार पत्र लेने स्टेशन की दुकान पर गया, वहाँ बुक-स्टॉल पर उसे स्वामी विवेकानन्द की सुन्दर फोटो वाली पुस्तक दिखाई दी, उसने वह खरीद ली। उस पुस्तक को पढ़ने के बाद उसका आत्महत्या का विचार चला गया, उसे नया जीवन मिल गया। उसे अपने जीवन का सच्चा अर्थ मिल गया। दूसरों को प्रेम करना, दूसरो की सेवा करना, यह जीवन का प्रयोजन है, उसे समझ में आ गया। उसके बाद उसने सेना से निवृत्ति ले ली और अपने गाँव रालेगाँव सिद्धि, महाराष्ट्र में पहुँचा। अनेक विपरीत परिस्थितियों में भी उसने सेवाकार्य शुरू कर दिया। धीरे-धीरे पूरा गाँव बदल गया। उसकी आश्चयर्जनक सफलता से प्रभावित होकर उसे महाराष्ट्र के ३०० गाँवों के विकास का कार्य सौंपा गया। यह युवक है अन्ना हजारे ! आज वे महाराष्ट्र के असंख्य ग्रामजनों के उद्धारक के रूप में पूजे जा रहे हैं।

केरल में तिरूअन्तपुरम् एन.सी.सी का एक मेजर भयानक मानसिक हताशा से गुजर रहा था। उसका वैवाहिक जीवन बहुत दुखी था। वह बार-बार कहता था, ''मैं कब अपने आपको गोली मार दूँगा, कह नहीं सकता।'' उसकी ऐसी मानसिक दुर्दशा की बात को उसके कर्नल ने श्रीरामकृष्ण मिशन तिरूअनन्तपुरम् के एक संन्यासी को बताई। उस संन्यासी ने कर्नल को कहा कि 'मेजर से कहो कि पहले यह पुस्तक पढ़ ले, फिर उसे जो इच्छा हो वह करे।'' उसके बाद उन्होंने 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' की पुस्तक भेंट में दी। फिर कुछ महीनों के बाद कर्नल जब स्वामीजी से मिला, तब उसने कहा, ''स्वामीजी, आपकी पुस्तक ने जादू का काम किया। मेरे जूनियर को बचा लिया। अब वह कहता है कि ''सारा संसार कहे, तो भी मैं आत्महत्या जैसा पाप नहीं करूँगा।''

यह है सद्ग्रन्थों का प्रभाव। वह मन की स्थिति को ही समूल बदल डालता है। इसलिए जो केवल जीवन की विपत्तियों के समय ही नहीं, प्रतिदिन ऐसे सद्ग्रन्थों का नियमित अध्ययन करते हैं, उनके जीवन में विपत्ति आती ही नहीं है अर्थात् कैसी भी विकट परिस्थिति उन्हें बेचैन नहीं कर सकती है। **(क्रमशः)**

स्वामीजी आशीर्वाद करें

जीवन है अत्यल्प और भोग क्षणिक है।
जीवित है, वही जो जीता परिहत है।।
शव समान वे नर हैं, जो जीते स्वार्थ में।
महापुरुष है, वही जो जीता परमार्थ में।।
राजाओं को स्वामीजी ने यही उपदेश दिया।
त्याग-सेवा भारत-आदर्श, इससे आर्योत्कर्ष हुआ।।
विवेक-वैराग्य मन्त्र से जन-मन को शान्त कराया।
स्वामीजी के कण्ठ से वेदान्त विश्व में छाया।।
जग के कोने-कोने में अद्वैत-राग सुनाया।
भारत के लोगों को व्यावहारिक वेदान्त सुनाया।।
चतुर्योगसमन्वय से रामकृष्ण संघ बनाया था।
आत्ममोक्ष और जगतहित् का आदर्श सिखाया था।।
हुआ देश का युवा जाग्रत स्वराज की अभिलाषा से।
उठो जागो अमृतपुत्रो, धर्म की ऐसी परिभाषा से।।
तन-मन की गुलामी से फैली निराशा दूर हुई।
स्वतन्त्रता की क्रान्ति स्वामीजी से शुरु हुई।।
सच पूछो तो स्वामीजी थे, सचल घनीभूत भारत।
जनता के दुख देखकर उनका मन होता था आहत।।
स्वामीजी बन आये शंकर सेवा-धर्म सिखाने को।
मंगल हो सम्पूर्ण विश्व का, कर्मतत्त्व समझाने को।।
जीव-सेवा में हो शिव-दर्शन, स्वामीजी आशीर्वाद करें।
तिथि-पूजा पर वाक्यपुष्प की मेरी भेंट स्वीकार करें।।

(प्रेषक - vanbabavan02@gmail.com)

प्रेरक लघुकथा

काम-क्रोध-मद-मोह माया बन्धनमूल

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

एक बार प्रवचन देने के पूर्व गौतम बुद्ध ने हाथ में रखे रूमाल में कसकर दो गाँठें बाँधी। फिर उन्होंने प्रश्न पूछा, ''आपमें से कोई बताएगा कि यह वही रूमाल है, जिसे आपने पहले देखा था? एक शिष्य ने उत्तर दिया, ''रूमाल तो वही है, किन्तु अब इसमें ग्रन्थियाँ लगने से परिवर्तन हो गया है।'' उन्होंने पुन: प्रश्न किया, ''अच्छा बताओ, यदि मैं रूमाल के दूसरे छोरों को खींचूँ, तो क्या ये ग्रन्थियाँ खुल जाँएगी?'' शिष्य ने उत्तर दिया, ''नहीं, बल्कि ये और पक्की हो जाएँगी।'' तब मुझे क्या करना होगा? शिष्य ने कहा, ''ग्रन्थियों को खोलना होगा, किन्तु ये ग्रन्थियाँ कैसे लगी हैं, इसे जाने बिना वे आसानी से खुल न सकेंगीं।''

''मैं तुमसे इसी उत्तर की अपेक्षा कर रहा था।'' तथागत ने उस शिष्य से कहा। फिर उन्होंने कहा, ''किसी भी समस्या का हल ढूँढ़ने से पहले उसका मूल कारण जानना जरूरी होता है। लोग मुझसे हमेशा पूछते हैं –''लोभ, मद, मोह, क्रोध आदि विकार हमारे मन को कैसे ग्रस्त करते हैं? इनसे मुक्ति का उपाय क्या है? वे यह जानने का प्रयत्न नहीं करते कि वे इन विकारों से ग्रस्त कैसे हुए? यदि वे इन मनोविकारों का मूल कारण जानने की कोशिश करें और मन को पूर्ण नियंत्रित रखें, तो ये विकार हमें भ्रमित कर अपने बन्धन में जकड़ नहीं सकेंगे।''

मनुष्य का मन ही मन का साधक और बाधक होता है। मनुष्य का चंचल मन भौतिक इच्छा-आकांक्षाओं के वशीभूत हो स्वयं को उनसे आबद्ध कर लेता है। षड् विकार मन में गहराइयों से अपनी जड़ें जमा लेते हैं। समस्त दुख, क्लेश और व्यथाओं की जड़ बन्धन हैं। वे बन्धन मायाजन्य होते हैं। यदि मनुष्य के मन से देहाभिमान या 'मैं' पन जाता रहेगा, तो माया, मोह, मद, मत्सर आदि ग्रन्थियाँ उसे बाँध नहीं सकेंगी। ○○○

पैन ड्राइव
डी.वी.डी.

विवेक ज्योति

(1963 से 2018 तक 56 वर्षों के अंकों का डिजिटल संग्रह)

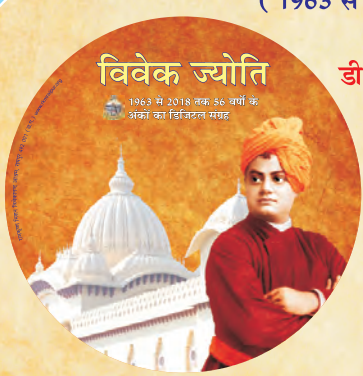

डी.वी.डी. मूल्य – 280/-

पैन ड्राइव मूल्य – 480/-

विवेक ज्योति के 56 वर्षों के अंकों की इस अमूल्य आध्यात्मिक, सांस्कृतिक सम्पदा में आप लेख, लेखक, अनुवादक, महीने अथवा वर्ष के अनुसार खोज कर सकते हैं, पृष्ठों को प्रिन्ट भी कर सकते हैं ।

: प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर
दूरभाष : 098271-97535
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org

समाचार और सूचनाएँ

स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा ११ सितम्बर, १८९३ को शिकागो धर्म-महासभा में प्रदत्त ऐतिहासिक व्याख्यान के १२५वें स्मरणोत्सव के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के केन्द्रों द्वारा विविध कार्यक्रम आयोजित किये गये :

जलपाईगुड़ी - १५ अगस्त, २०१८ को नारायण सेवा हुई, जिसमें १४० निर्धनों को भोजन और गृहस्थी का सामान उपहारस्वरूप दिया गया। दोपहर में सह-संघाध्यक्ष स्वामी शिवमयानन्द जी ने महाराज ने २०० भक्तों के लिए विशेष व्याख्यान दिया।

मदुराई (तमिलनाडु) में १ और १३ अगस्त, २०१८ को दो व्यक्तित्व विकास कार्यक्रम आयोजित हुये, जिसमें कुल २८० विद्यार्थी उपस्थित थे।

मनसाद्वीप (पं. बंगाल) में २६ अगस्त, २०१८ को युवा-सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें ५२५ युवाओं ने भाग लिया।

राजकोट (गुजरात) में ५ अगस्त को व्याख्यान हुआ, जिसमें १५० भक्त उपस्थित थे।

सेलम (तमिलनाडु) में जुलाई और अगस्त, २०१८ में सलेम और नामक्कल जिलों के ४२५ स्कूल और कॉलजों में सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए, जिसमें ४१,९५३ विद्यार्थियों ने भाग लिया।

श्यामपुकुरबाटी (पं. बंगाल) में २१ अगस्त, २०१८ को युवा सम्मेलन हुआ, जिसमें २०० युवा उपस्थित थे।

भगिनी निवेदिता की १५०वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन के निम्नलिखित केन्द्रों ने विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये :

काकुड़गाछी (पं. बंगाल) में १९ अगस्त, २०१८ को विशेष व्याख्यान हुआ, जिसमें ६०० लोग उपस्थित थे।

मनसाद्वीप (पं. बंगाल) में २५ अगस्त, २०१८ को शोभायात्रा, विशेषज्ञों द्वारा परिचर्चा एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम हुये, जिसमें ७५० प्रतिनिधि उपस्थित थे।

मेदिनीपुर (पं. बंगाल) में २६ अगस्त, २०१८ को आध्यात्मिक शिविर हुआ, जिसमें ४५० भक्तों ने भाग लिया।

मुम्बई में १२ दिसम्बर से ३ अप्रैल, २०१८ तक मुम्बई के १७ कॉलेजों में १७ कार्यक्रम हुये, जिनमें ऑडियो- विजुअल प्रस्तुति एवं प्रश्नोत्तरी का आयोजन हुआ। कुल ३००० विद्यार्थियों ने भाग लिया।

राजकोट (गुजरात) में १०, ११ और १२ अगस्त, २०१८ को युवा-सम्मेलन, शिक्षक-सेमिनार एवं ध्यान-सत्र आयोजित हुये, जिनमें कुल १८०० लोग उपस्थित थे।

लखनऊ (उ.प्र.) में १ अगस्त, २०१८ को उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्रीयोगी आदित्यनाथ जी ने नये सोलार प्लान्ट एवं बिजली ट्रान्सफर्मर का उद्घाटन किया।

राँची मोराबादी (झारखंड) में सह-संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने ४ अगस्त को श्री सुदर्शन भगत आदिवासी जनजाति विकास राज्यमंत्री, भारत सरकार एवं अन्य गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में मुर्गीपालन भवन का उद्घाटन किया। ७ अगस्त को पूज्य महाराजजी ने दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र की ५०वीं वर्षगाँठ 'स्वर्ण जयन्ती' का उद्घाटन किया। इस अवसर पर दिव्यायन पर वृत्तचित्र का भी विमोचन किया गया।

नारायणपुर आश्रम (छ.ग.) को सम्मानित किया गया

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर को १३ सितम्बर, २०१८ को क्रीड़ा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हेतु छत्तीसगढ़ खेल और युवा-कल्याण विभाग ने मुख्यमन्त्री श्रीरमन सिंह के द्वारा विशेष सम्मान से सम्मानित किया।

भावप्रचार परिषद की सभा

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ भाव-प्रचार परिषद की सभा २९ और ३० सितम्बर, २०१८ को पखानजोर में आयोजित हुई, जिसमें स्वामी व्याप्तानन्द, स्वामी निर्विकारानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द और भावधारा के संयोजक स्वामी तन्मयानन्द ने भाग लिया। बेलूड़ मठ के प्रतिनिधि थे रामकृष्ण मिशन मोराबादी, राँची के सचिव स्वामी भवेशानन्द जी।